शेखावाटी ग्रन्थ-माला संख्या—२

खेतड़ी-नरेश और विवेकानन्द

लेखक

भारतीय गोधन, मालविका, अरविन्द-चरित, सीकरका इतिहास
खेतड़ीका इतिहास, आदि विविध ग्रन्थोंके प्रणेता
दैनिक कलकत्ता-समाचार एवं हिन्दू-संसारके
प्रधान सम्पादक

पण्डित झाबरमल्ल शर्मा

प्रकाशक
राजस्थान एजेंसी
नं० ८, रामकुमार रक्षित लेन, (चीनीपट्टी)
बड़ाबाजार, कलकत्ता।

प्रथम बार २१००]   १९८४ वि०   [मूल्य १)

प्रकाशक—
श्रीवसन्तलाल शर्मा
राजस्थान एजेन्सी
नं० ८, रामकुमार रक्षित लेन,
(चीनीपट्टी) बड़ाबाजार कलकत्ता

पुस्तक मिलनेके पते—

(१) हिन्दू-संसार-कार्यालय, नयाबाजार, दिल्ली

(२) हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
२०३ हरिसन रोड, कलकत्ता

(३) कलकत्ता-पुस्तक-भण्डार
१७१ ए० हरिसन रोड,
कलकत्ता।

(४) गङ्गा-पुस्तकमाला कार्यालय
अमीनाबाद पार्क,
लखनऊ

(५) प्रकाश पुस्तकालय
फीलखाना, कानपुर

(६) हिन्दी मन्दिर, प्रयाग।

(७) हरिदास एण्ड कम्पनी
२०१, हरिसन रोड,
बड़ाबाजार कलकत्ता।

(८) साहित्य-रत्न-भण्डार
आगरा

(९) दि पापुलर ट्रेडिङ्ग कम्पनी
११५ हरिसन रोड, कलकत्ता

(१०) सस्ता-साहित्य-प्रकाशक
मण्डल, अजमेर

(११) हिन्दी-पुस्तक-भण्डार, लहरियासराय (दरभङ्गा)

(१२) सैनिक पुस्तक भण्डार, सैनिक कार्यालय, आगरा

मुद्रक—
गङ्गाप्रसाद भोतीका,
एम० ए०, बी० एल०, काव्यतीर्थ
"वणिक् प्रेस"
१, सरकार लेन,
कलकत्ता

प्रस्तावना

मेरे हृदयमें पण्डित झावरमल्लजी शर्माके आग्रहपूर्ण अनुरोधने खेतड़ी-नरेश स्वर्गवासी राजा अजितसिंहजी बहादुरके नामकी स्मृति ताजा बना दी है। वृद्धावस्था और अस्वस्थता आदिके कारण अशक्त रहनेपर भी मैं "खेतड़ीनरेश और विवेकानन्द" नामक प्रस्तुत पुस्तकके लिये कुछ पंक्तियां लिख देनेके अनुरोधको टाल न सका।

मेरा परिचय खेतड़ीनरेश राजा अजितसिंहजी बहादुरसे सर्व प्रथम सन् १८९३ ई० में हुआ था। इससे पहले ही राजाजी साहब, पूज्यपाद स्वामी विवेकानन्दजी महाराजकी कृपा पाकर धन्य हो चुके थे। स्वामीजीकी आज्ञाके अनुसार बहुत दिनोंतक मुझे भी खेतड़ीमें रहनेका अवसर मिला। खेतड़ी-राज्य और उसकी प्रजाकी उन्नतिके लिये विविध प्रकारके सदनुष्ठानोंमें मैं भाग लेता रहा। शिक्षा-प्रचारकी ओर ही मेरा मुख्य लक्ष्य था। राजा अजितसिंह-जी बहादुर स्वयं ही बड़े गुणग्राही और विद्योत्साही पुरुषरत्न थे। फिर स्वामीजीके सत्सङ्गके प्रभावसे उनका चरित्र अधिकतर समुज्ज्वल हो गया था। राजाजीका जोड़ा आजके राजस्थानी नरपति-समूहमें दिखलायी नहीं देता। मुझे यह कहनेमें सङ्कोच नहीं कि राजाजी नीतिमत्ता, नम्रता एवं शिष्टाचारके मूर्तिमान स्वरूप

थे। सब तरहके गुणवान पुरुषोंका आदर और सत्कार करना ही उनका स्वभाव था। गुणियोंकी परीक्षा करनेकी रीति भी उनकी अनूठी थी। क्षमा-गुणके लिये तो वे आदर्श थे। मैंने स्वयं देखा, एक पंजाबी फक्कड़ राजाजीके समीप उपस्थित होकर अकारण उन्हें गालियां देने लगा, फिर भी उनकी धैर्यच्युति नहीं हुई, बल्कि उसकी सेवाका यथोचित प्रबन्ध कर अपनी स्वाभाविक शिष्टताका परिचय देनेमें ही उन्होंने आनन्द माना। इस क्षमाशीलता एवं अतिथिसत्कार-परायणताका उनके दरबारियोंपर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा था।

प्राचीन नीतिवचन है—

"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्"

किन्तु राजा अजितसिंहजी बहादुरके मुँहपर अप्रिय सत्य वचन बारम्बार कहकर मैंने उनकी जो धैर्ययुक्त क्षमा देखी, वह मुझे अन्यत्र किसी और राजा या रईसमें दृष्टिगोचर न हुई। राजाजी वस्तुतः अति कठोर हितकारी सत्यवचनके जैसे आदर्श-श्रोता थे, वैसे ही अद्भुत कर्मी भी थे। वे अच्छे कवि थे और उनका हृदय प्रेम-पूरित था। उनके रचित एक मधुर पदकी याद मुझे अभीतक बनी हुई है। पदकी टेक थी—"बिन बिन मोकूं कछु न सुहावे। तड़फत जिय अति ही अकुलावे"—इस पदकी समाप्तिमें था—"मरण न देत आस मिलबेकी" बस, इस शेष पंक्तिके भावकी प्रशंसा करते समय पद गाते हुए स्वामी विवेका-नन्दजी महाराज मगन हो जाते थे। यह एक ही पद राजा-

जीके प्रेम-पूर्ण भावुक हृदयका प्रकृष्ट परिचायक है। राजाजी अपनी प्रजाकी उन्नतिके लिये सदा तत्पर रहते थे।

राजाजीकी मृत्युके थोड़े ही समय बाद स्वामी विवेकानन्दजीने इहलीला संवरण की। राजाजीके वियोगका उनके हृदयमें बड़ा दुःख था, और उस दुःखको उन्होंने कई बार हम लोगोंके सामने व्यक्त किया था। वास्तवमें राजा अजितसिंहजी, स्वामीजीके अनुरक्त भक्त और एक प्रधान सहायक-स्तम्भ थे। हिन्दू-संसारके प्रधान सम्पादक श्रीयुक्त पण्डित झाबरमल्लजी शर्म्माको धन्यवाद है कि उन्होंने राजाजी और स्वामीजीके पारस्परिक सम्बन्धका परिचय देनेवाली यह सुन्दर पुस्तिका लिखकर देशवासियोंके समक्ष रख दी। पुस्तक सूत्ररूप होनेपर भी इसमें कोई विशेष घटना छूटने नहीं पायी है। आशा है, हिन्दी-भाषाभाषी जनता इस पुस्तकके महत्त्वको समझेगी।

बेलूड़-मठ
२७—६—२७

अखण्डानन्द
(स्वामी विवेकानन्दजीके गुरुभाई और सहकारी कार्यकर्ता)

दो शब्द

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

—श्रीमद्भगवद्गीता

बाप्पा रावल, प्रताप और मीराबाईकी अस्थि-मिश्रित, पुनीत वालुकामयी राजपूतानेकी मरुभूमिमें कुछ ऐसी ज्योतिस्मयी शक्ति है कि समय-समयपर, उस रक्त-रंजित स्थलमें, वह शक्ति लोगोंके हितार्थ, मानवरूप धारण किया करती है। स्वर्गीय राजा अजीत-सिंहजी भी उस शक्तिके एक प्रतिविम्ब थे। पाठक लेखकके इस कथनको भावुक हृदयका उड़ान समझेंगे। पर पुस्तकको आद्यो-पान्त पढ़ जानेके उपरान्त उन्हें भान होगा कि स्वामी विवेकानन्द-जी और राजा अजीतसिंहजी उस सृजनहार शक्तिके दो निकटतम रूप थे, जो इस संसारमें उस शक्तिकी प्रेरणासे आये थे और अपना कर्त्तव्य पालन करके उसीमें लीन हो गये।

सन १८९१ ई० में स्वामी विवेकानन्दजी और राजा अजीत-सिंहजीकी पहली भेट हुई। एकने दूसरेको पहचाना और दोनों ओरसे एक-दूसरेके प्रति आकर्षण बढ़ता ही गया। पारस्परिक प्रेम-स्रोत उमड़ा और प्रतिदिन वह गंगाकी बढ़ती हुई धारके समान उमड़ता ही गया।

स्वामी विवेकानन्दजीके जीवनमें उनका राजा अजीतसिंहजीसे सम्बन्ध होना बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। खेतड़ी आनेसे पूर्व ही श्री स्वामीजी अपने गुरुका कृपा-प्रसाद लाभ कर चुके थे। उनके अन्तःकरणके मनोविकार वास्तविक तत्त्वके दर्शनसे धुल चुके थे। 'हमारे प्रभु औगुन चित न धरो' गीतने उनके हृदयसे रहा-सहा विकार भी दूर कर दिया। श्री स्वामी विवेकानन्दजीके विषयमें अधिक लिखना व्यर्थ है और साथ ही यह पुस्तक स्वामीजीका जीवन-चरित्र नहीं है। स्वामीजीने अपने आध्यात्मिक बलसे वेदान्त-पताका अमेरिकामें फहराकर भारतवर्ष और हिन्दू-जातिका गौरव बढ़ाया था। वस्तुतः स्वामीजी तरुण-भारतके स्फूर्ति-स्रोत थे। अमेरिकामें जाकर उन्होंने भारतके लिये जितना आन्दोलन किया, उतना कदाचित् किसीने आजतक नहीं किया। इस बातके लिखनेकी आवश्यकता इसलिये हुई कि स्वामीजी द्वारा अमेरिकामें किये गये भारतीय आन्दोलनमें खेतड़ी-नरेश राजा अजातसिंहजीका भी भाग था। स्वयं स्वामीजीकी उक्ति है—"भारतवर्षकी उन्नतिके लिये जो थोड़ा-बहुत मैंने किया है, वह खेतड़ी-नरेशके न मिलनेसे न होता। (What little I have done for the improvement of India would not have been done if the Rajaji had not met me.)"

स्वामीजीके राजा अजीतसिंहजीको अमेरिकासे लिखे हुए पत्र अपना खास स्थान रखते हैं। स्वामीजीने हिन्दूधर्मका वास्तविक रूप अपने पत्रोंमें बड़े ही सरल और हृदयग्राही शब्दोंमें समझाया

है। पत्रोंका पढ़ते हुए कल्पना-शक्तिकी लहर-सी उठती प्रतीत होती है, मानो वह लहर उमड़कर हिमालयसे टकराकर, गगनभेदी शब्द करती हुई, फिर हृदयोंमें व्याप्त हो जाती है। स्वामीजीने राजपूतोंकी महत्तापर बड़े ही मार्मिक भाव प्रदर्शित किये हैं।

* * * *

स्वामीजीकी चिकागोकी वक्तृताएं तो ग़ज़बकी हैं। छोटे-छोटे भाषणोंमें उन्होंने हिन्दू-धर्मका सत खींचकर रख दिया है। अमेरिकावालोंपर उनकी मुहर लग गयी थी। स्वामीजीने उन्हें समझाया कि भारतवासी धार्मिक मामलोंमें कूप-मण्डूक नहीं रहे। खूनी तलवारोंसे उन्होंने धर्मके नामपर लोगोंको नहीं काटा। हिन्दुओंने किसीके देवालय नहीं तोड़े। उन्होंने पीड़ितोंको—उदाहरणार्थ पारसी लोगोंको—गले लगाया। स्वामीजीको हिन्दुओंके बाह्याडम्बरोंसे बड़ी वेदना होती थी। स्वामीजी जानते थे कि हिन्दू लोग अपने स्वरूपको भूल गये हैं। हिन्दू-धर्म्म अगाध महासागरके समान है, जिसमें संसारके सर्व धर्म—जड़-वादसे लगाकर नास्तिकवादतक—समाये हुए हैं। हिन्दूधर्म कलि-मलहारिणी भागीरथीके निर्मल नीरके समान है जिसमें पहुंचकर सब नदी नद पवित्र और शक्तिशाली हो जाते हैं।

* * * *

राजा अजीतसिंहजी बड़े मनस्वी और कर्त्तव्य-तत्पर पुरुष थे। उनके जीवनकी घटनाएं स्मरण करके प्राचीन भारतके शासनका स्मरण हो आता है। कहां हैं राजा अजीतसिंहजी जैसे राजा जो सच्चे संन्यासियोंकी—जिन्हें स्वार्थ छूतक नहीं गया—खरी-खोटी

बातें सुन लें और सुनकर अपनी भूल मान लें और सुधार करनेको तैयार हों ? भारतवासियोंका और विशेषकर राजाओंका यह गुण रहा है कि विद्याके सम्मुख उन्होंने सर्वदा सिर झुकाया है। राजा अजीतसिंहजीको देरसे उठनेकी आदत थी। यह दोष उस शिक्षाप्रणालीका फल था जो आजकल राजकुमारोंको दी जाती है। भारतवर्ष-जैसे गरम देशमें ब्राह्म मुहूर्तमें उठना अनेक लाभोंका दाता है। पर विषैली शिक्षा-प्रणालीसे राजाजी-को ८-९ बजे उठनेकी आदत पड़ गयी। स्वामी विवेकानन्द-जीके गुरुभाई स्वामी अखण्डानन्दजीको जब यह ज्ञात हुआ त उन्होंने राजाजीको आड़े हाथों लिया। राजाजीने अपनी भूल स्वीकार की। देरसे उठनेकी कुटेवका कारण बतलाया और अगले दिनसे प्रातःकाल उठने लगे। यही क्यों, राजा अजीतसिंहजीको उनकी वर्षगांठके समय, सीधे-साधे, राजभक्त और प्रपंचहीन किसान अपनी श्रद्धांजलि-रूप नज़र (भेंट) दिया करते थे, पर गरीब किसानोंको जो दूरसे दर्शनके लिये आते थे, सुसज्जित राज-दरबारमें सम्मिलित होकर राजाजीको स्वयं नज़र देनेका मौका नहीं मिलता था बल्कि वे उद्दण्ड पहरेवालों द्वारा हटा दिये जाते थे। स्वामी अखण्डानन्दजीके हृदयपर इस दृश्यने गहरी चोट की, और उन्होंने राजाजीको उनका कर्त्तव्य समझाया। राजाजी विह्वल हो गये और फिर अगले वर्षसे छोटे-बड़ों सबकी नज़र उन्होंने स्वयं ली। स्वामी विवेकानन्दजीने अमेरिकासे राजपूतानेमें कार्य करनेके लिये लिखा था कि निष्काम सेवा परम धर्म है। 'मातृदेवो भव,

पितृदेवो भव' के स्थानमें निष्काम सेवाके लिये हमें "दरिद्रदेवो भव और मूर्खदेवो भव" होना चाहिये। यही उच्च भाव है, जिसके विस्तारसे भारतवर्ष अपने गत गौरवको पुनः प्राप्त कर सकता है।

राजस्थान—शेखावाटीके लिये यह परम सौभाग्यकी बात है कि वहां राजा अजीतसिंहजीके समान धर्मात्मा पुरुष हो गये हैं, जिनकी छत्र-छायामें खेतड़ीमें 'रामकृष्ण मिशन'की स्थापना हुई। यही क्यों स्वामीजीने विविदिषानन्दसे विवेकानन्द नामतक राजा अजीतसिंहजीके प्रेमानुरोधसे धारण किया था।

श्री पं० झाबरमल्लजी शर्म्माने यह पुस्तक लिखकर दार्शनिक विचारवालों, भक्तों और स्वामी विवेकानन्दजीके प्रेमियोंका बड़ा उपकार किया है। पुस्तक स्वामीजीके जीवनपर निस्सन्देह एक नया प्रकाश डालती है। अच्छा हो, इस पुस्तकका अवलोकन देशी-नरेश तथा सरदार लोग करें। वास्तवमें राजा अजीतसिंहजीका आदर्श देशी नरेशों, विद्वानों, धनी लोगों और उनके कुटुम्बियोंके लिये बड़ा ही श्रेयस्कर है।

किरथरा
पो० मक्खनपुर
१-६-२७ ई०

श्रीराम शर्म्मा (बी० ए०)

श्रीहरिः शरणम्

लेखककी भूमिका

खेतड़ी-नरेश स्वर्गवासी राजा अजीतसिंहजी बहादुर राजपूताना-प्रान्तमें बड़े उन्नतिशील राजा हो गये हैं। यद्यपि खेतड़ी (शेखावाटी) जयपुरका मण्डलवर्ती एक छोटा राज्य है, तथापि राजा अजीतसिंहजीकी गुणग्राहकताके कारण उसका नाम देश-देशान्तरोंमें व्यापक हो गया। संवत् १९२७ से १९५७ तक राजा अजीतसिंहजी बहादुर खेतड़ीके राजसिंहासनकी शोभा बढ़ाते थे।

उस समयके विद्वानों और गुणियोंमें बहुत थोड़े लोग ऐसे होंगे, जो राजाजीसे मिलकर सम्मानित एवं उत्साहित न हुए हों। वे बहुश्रुत विद्वान्, कुरीति-संशोधक सुधारक, सुचतुर व्यवहारज्ञ, सङ्गीत-पारङ्गत गायक, प्रतिभाशाली कवि, विचक्षण पुरुष-परीक्षक और नीति-निपुण नरेश थे। स्वर्गवासी पं० चन्द्रधरजी शर्म्मा गुलेरी बी० ए० के शब्दोंमें जयपुरनरेश महाराजाधिराज सवाई रामसिंहजीको छोड़कर राजा अजीतसिंहजीके समान सर्वतोमुखी प्रतिभा आधुनिक राजपूतानेके किसी नरेशमें नहीं देखी गयी। राजाजी बहादुर वेदान्तके परम भक्त थे और सभी विद्याओंके उपासक थे। दैव-संयोगसे उनका स्वामी विवेकानन्दजीसे परिचय

हुआ और उस परिचयके परिणाममें एकने दूसरेको पहचान लिया। स्वामीजी और राजाजीका मिलना मानों कर्मयोग और राजयोगका शुभ :सम्मिलन था। इस छोटीसी पुस्तिकामें उन्हीं दोनों संस्कारी आत्माओंके सम्बन्धकी सामग्री एकत्र करनेका प्रयत्न किया गया है।

स्वामीजीकी जीवन-शृङ्खलाके साथ खेतड़ी-नरेशके नामका सम्बन्ध इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि प्रान्तीयताकी सङ्कीर्ण भावना भी उस सम्बन्धको विच्छिन्न नहीं कर सकती। इस दशामें यह प्रयत्न बहुत पहले होना चाहिये था और अच्छे हाथोंसे होना चाहिये था। परन्तु जब इस दिशामें कुछ नहीं हुआ, तब मेरा यह प्रयत्न अकरणात् करणं श्रेयः—अवश्य समझा जायगा।

मैंने एक दूसरे विचारसे भी इस पुस्तकका सङ्कलन करना आवश्यक समझा है। राजा अजीतसिंहजी बहादुरकी ज्येष्ठा राजकुमारी परमविदुषी श्रीमती सूर्यकुमारीजी शाहपुरा (मेवाड़) के श्रीमान् राजाधिराजकुमार उमेदसिंहजीकी धर्मपत्नी थीं। वे अब संसारमें नहीं हैं। देहावसान होनेसे कुछ समय पहले श्रीमतीने आदरणीय बन्धुवर पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरीजीसे यह इच्छा प्रकट की थी कि मैं स्वामी विवेकानन्दजीके सब ग्रन्थों, व्याख्यानों और लेखोंका प्रमाणिक हिन्दी अनुवाद छपवाऊंगी। श्रीमतीकी इस अन्तिम इच्छाकी पूर्तिके लिये उनके सुयोग्य पति शाहपुराके राजाधिराजकुमार श्रीमान् उमेदसिंहजीने पं० गुलेरीजीके परामर्शसे एक लाख रुपये विनियोग करनेका सङ्कल्प किया था।

तदनुसार पण्डित गुलेरीजीके सम्पादकत्व एवं काशी नागरी प्रचारिणी सभाके तत्त्वावधानमें सूर्यकुमारी-पुस्तकमालाका प्रकाशन आरम्भ हुआ था, जिसमें अन्य उपयोगी पुस्तकोंके साथ साथ स्वामी विवेकानन्दजीके ज्ञानयोगके दो खण्ड भी निकल चुके हैं। दुःखका विषय है कि पं० गुलेरीजीके असामयिक तिरोधानसे उक्त पुस्तकमालाका पूर्व निश्चित क्रम रुक गया और ज्ञानयोगके दो खण्डोंके अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ भी स्वामीजीका प्रकाशित नहीं हुआ। जो हो, वह काम तो बहुत बड़ा है; परन्तु यह छोटासा काम—श्रीमती सूर्यकुमारीजीके पुण्यश्लोक पिता राजा अजीतसिंहजी बहादुर और स्वामी विवेकानन्दजीसे सम्बन्ध रखनेवाली यथासम्भव सभी बातें इसमें सन्निवेशित करनेका—मैंने कर दिया है। इसके द्वारा श्रीमतीजीकी अन्तिम इच्छा पूर्तिमें आंशिक सहायता अवश्य पहुंचेगी। लेखक खेतड़ी राज्यका अधिवासी है, इसीलिये वह श्रीमती राजकुमारीजीकी अन्तिम कामनाकी पूर्तिमें सहायता पहुंचाना अपना कर्तव्य समझता है।

मैं समझता हूं, इस पुस्तकसे स्वामी विवेकानन्दजीके जीवनकी घटनाओंपर कई विषयोंमें नया प्रकाश पड़ेगा। इसके संकलनमें मुझे अपने निजी अनुसन्धान तथा स्वामीजीके प्रकाशित ग्रन्थों, जीवनियों और पत्रोंके अतिरिक्त स्वामी विवेकानन्दजीके गुरुभाई स्वामी अखण्डानन्दजीसे बड़ी सहायता मिली है। स्वामी अखण्डानन्दजी वृद्ध हैं, परन्तु उत्साह उनमें युवकोंसे अधिक है।

स्वामीजीके आदेशसे वे स्वयं खेतड़ी-नरेशके आतिथ्यमें रहकर सार्वजनिक कार्य कर चुके हैं। अतएव उन्होंने जो बातें बतलायीं, वे अन्यत्र दुर्लभ थीं। स्वामीजीने इस पुस्तकको आद्योपान्त पढ़नेका कष्ट कर इसकी प्रस्तावना लिख देनेकी भी कृपा की है। इसके लिये मैं उनका अनुगृहीत हूं। पण्डितवर राधाकृष्णजी मिश्र, श्रीकृष्ण-सन्देश-सम्पादक पं० लक्ष्मणनारायणजी गर्दे, पं० वृद्धिचन्द्रजी वैद्य, पं० रामचन्द्रजी जोशी, पं० धन्नूलाल शर्मा बी० ए० और पं०शम्भूरामजी पुजारीने समय-समयपर परामर्श देकर मुझे उपकृत किया है। हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक पं० श्रीरामजी शर्मा बी० ए० इस पुस्तकको देखकर इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने इसके लिये खास तौरसे अपने "दो शब्द" लिखनेकी अनुकम्पा की है। वणिक् प्रेसके प्रबन्धक बा० गंगाप्रसादजी मोतीका एम० ए० ने प्रूफ देखनेमें मेरी सहायता की है। मैं अपने सभी कृपालुओंका धन्यवाद करता हूं और अपनी त्रुटियोंके लिये पाठकोंसे क्षमा मांगता हूं।

कलकत्ता
नवरात्र १९८४ वि०

निवेदक
झाबरमल्ल शर्म्मा



उन्नति-प्रयासी जनतामें सद्भावोंके

प्रचारार्थ

की

ओरसे

उपहार

खेतड़ी-नरेश और विवेकानंद

पहला अध्याय

[राजपूताना आबूमें खेतड़ी-नरेशसे स्वामीजीका प्रथम परिचय और संलाप, परस्पर प्रेम, प्रश्नोत्तर, राजाजी सहित स्वामीजीका खेतड़ीमें आगमन और अवस्थान, खेतड़ीके राजपण्डित नारायणदासजीसे अष्टाध्यायी एवं महाभाष्यादिका अध्ययन, एक वेश्या और स्वामीजी, राजाजीको पदार्थ-विज्ञान और कानूनकी शिक्षा, विविदिषानन्दसे विवेकानन्द नाम-धारण, स्वामीजीके गुरुभाई स्वा० अखण्डानन्दजीका स्वास्थ्य-लाभके लिये खेतड़ीमें निवास]

राजपूतानेवालोंका शिमला, मसूरी या दार्जिलिङ्ग,—आबूका पहाड़ है। वह शीतल और स्वास्थ्यकर प्रसिद्ध स्थान है। राजा, महाराजा, रईस वहां आते जाते रहते हैं। गर्मीका मौसिम प्रायः वहीं बिताते हैं। गवर्नर जनरलके राजपूतानास्थित एजेण्टका आफिस भी आबूमें ही रहता है। खेतड़ी-नरेश राजा अजितसिंहजीने आबूमें एक कोठी खरीद ली थी जो 'खेतड़ी हाउस' के नामसे प्रसिद्ध है। जिस समयका हम वर्णन लिख रहे हैं, उस समय राजाजी आबूमें अवस्थान कर रहे थे। सन् १८९१ ई० का एप्रिल महीना था। इसी सन्की १४ वीं एप्रिलको स्वामी विवेकानन्द भी

वहां पहुंचे। आबूमें वे ठाकुर मुकुन्दसिंहजी*के यहां ठहरे हुए थे। उनकी प्रसिद्धिका डङ्का विशेष नहीं बजा था।

एक दिन राजाजीके प्राइवेट सेक्रेटरी मुन्शी जगमोहनलालजीका अपने एक मित्रके साथ स्वामीजीके पास जाना हो गया। मध्याह्न काल था। स्वामीजी आराम कर रहे थे। लेटे लेटे उनकी आंखें लग गयी थीं। थोड़ी देर उन लोगोंकी प्रतीक्षा करनी पड़ी। इतनेमें स्वामीजी उठे और बातें हुई। स्वामीजीके ज्ञान-गर्भ कथनोपकथनसे मुन्शीजी मुग्ध हो गये और अपने स्थानपर लौटकर उन्होंने राजाजी बहादुरको स्वामीजीकी भेंट तथा वार्तालापका सब वृत्तान्त कह सुनाया। गुणग्राही राजाजीने स्वामीजीसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की। तदनुसार स्वामीजीका सादर आह्वान किया गया और उन्होंने कृपाकर दर्शन दिया। शिष्टाचारके प्रश्नोत्तरोंके पश्चात् राजाजी और स्वामीजीमें इस प्रकार वार्तालाप हुआ :—

---

* ठाकुर मुकुन्दसिंहजी अलीगढ़की ओरके रहनेवाले एक प्रसिद्ध आर्य-समाजी सज्जन थे। स्वामी विवेकानन्दजीपर उनकी श्रद्धा जम गयी थी। स्वामीजी भी उनसे बहुत प्रसन्न थे। आर्य-समाजके सिद्धान्त-ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाशमें "न तस्य प्रतिमा अस्ति"—इस वाक्य द्वारा मूर्तिपूजाका खण्डन किया गया है। ठाकुर मुकुन्दसिंहजी दुराग्रही नहीं,—विचारशील व्यक्ति थे। धार्मिक आलोचनाके सिलसिलेमें ठाकुर साहबने प्रसङ्गवश कहा था कि "इस खण्डनके द्वारा ही मूर्ति-पूजाका होना सिद्ध है, क्योंकि जो वस्तु होती है उसीका खण्डन किया जाता है। इस विचार-शक्ति और निष्पक्षताकी स्वामीजी प्रशंसा करते थे। स्वामीजीकी विद्वत्ताका भी ठाकुर साहब-पर बड़ा प्रभाव पड़ा था और वे उनके भक्त बन गये थे।

राजाजीने पूछा—स्वामीजी, जीवन क्या है ?

स्वामीजीने कहा—प्रतिकूल अवस्थाचक्रमें जीवके आत्मस्वरूप दिखलानेका नाम जीवन है।

राजाजीने फिर प्रश्न किया—अच्छा महाराज, शिक्षा क्या है ?

स्वामीजीने उत्तर दिया—विचारोंका स्नायुसे घनिष्ठ सम्बन्ध करनेका नाम शिक्षा है। जबतक कोई भाव मनमें ऐसे दृढ़ संस्कारके रूपमें स्थापित न हो जाय कि जिससे प्रत्येक शिरा और स्नायुमें उसका कार्य विकसित हो, तबतक वह भाव वास्तवमें मनकी अपनी सम्पत्ति नहीं कहा जा सकता। उदाहरणके लिये हम परमहंसदेव* के जीवनकी घटनाओंको ले सकते हैं। किसी धातुके एक टुकड़ेके स्पर्शसे ही परमहंसदेवका शरीर निद्रावस्थामें भी कांप जाता था। यह उनके काञ्चन-त्यागकी सिद्धि थी। उनका संपूर्ण जीवन मानों पवित्रताका विकास और मानव-मनके लिये सर्वोत्कृष्ट शिक्षाके आदर्शका दृष्टान्त था।

* प्रातःस्मरणीय रामकृष्ण परमहंस स्वामी विवेकानन्दके गुरु थे। रामकृष्णका जन्म हुगली जिलेमें खुदीराम चट्टोपाध्यायके गृहमें हुआ था। उनका मन पढ़ने लिखनेमें नहीं लगता था परन्तु उनकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। रामायण महाभारतादिकी कथा पण्डितोंसे सुनकर ही उन्होंने ज्ञान प्राप्त कर लिया था। कलकत्तेसे प्रायः २ कोस उत्तर, दक्षिणेश्वर नामक स्थानमें अपने ज्येष्ठ भ्राताकी मृत्युके बाद रामकृष्ण कालीजीके पुजारी-पदपर नियत हुए थे। श्रद्धासमन्वित भावसे पूजा करते-करते ही उन्होंने योगाभ्यास आरम्भ किया। उन्हें एक संन्यासी गुरु मिल गये थे। उनसे संन्यास ग्रहण करनेके बाद रामकृष्ण परमहंसने कामिनी काञ्चनका

पहले दिनकी मुलाकातमें ही स्वामीजीसे वार्तालाप कर राजाजी बहुत प्रसन्न हुए। खासकर उनके प्रश्नोत्तरके ढङ्ग, धर्मज्ञान और स्वदेशभक्ति आदिका राजाजीपर विशेष प्रभाव पड़ा। इसके बाद वे जबतक आबूमें रहे, तबतक स्वामीजीसे बराबर मिलना-जुलना होता रहा। धार्मिक तथा अन्यान्य विषयोंकी बातें होती रहती थीं।

स्वामीजीको पढ़नेका अभ्यास विलक्षण था। पुस्तक पढ़ते समय १०-१२ सेकेण्डमें वे एक पृष्ठ उलट देते थे और इसी प्रकार दूसरा तीसरा, जहांतक पढ़ते उलटते जाते थे। उनके पढ़नेका यही क्रम था। एक दिन राजाजीने पूछा—स्वामीजी, आप इतनी जल्दी पृष्ठ उलट कैसे देते हैं, क्या इतनी देरमें समूचा पृष्ठ पढ़ डालते हैं? स्वामीजीने कहा—राजन्, आपने देखा होगा कि जब कोई लड़का पहले पहल पढ़ना सीखने लगता है, तब वह एक एक अक्षरको ध्यानसे देखकर कई बार उच्चारण करता है। इस प्रकार शब्दतक पहुंचता है। फिर एक एक शब्दको कई बार कहता हुआ पूरा वाक्य पढ़ पाता है। पुनः धीरे धीरे जब उसका अभ्यास बढ़ने लगता है, तब शब्द, शब्दके पश्चात् पूरे वाक्यपर उसकी दृष्टि

सर्वथा त्याग कर दिया। उनकी लोगोंने कई प्रकारसे परीक्षा ली। बङ्गालमें उनके त्याग और महात्मापनकी धूम मच गयी। बड़े-बड़े शिक्षित उनके शिष्य हुए। 'रामकृष्ण मिशन' इन्हीं परमहंसदेवके नामपर उनके शिष्य सम्प्रदाय द्वारा प्रतिष्ठित हुआ। भारतवर्षमें यह सेवा-संस्था अपने ढङ्गकी एक ही है। ५२ वर्षकी अवस्थामें परमहंसदेवने इह-लीला संवरण की। वे महापुरुष थे।

पड़ती है। इसी प्रकार जिस मनुष्यमें भाव-ग्रहण करनेकी शक्ति हो जाती है, वह पूरा पृष्ठ एक साथ ही पढ़ सकता है और उसे पृष्ठकी सभी बातें एक साथ ही मालूम हो जा सकती हैं। इसमें कोई विचित्रता या असम्भवता नहीं है, यह केवल अभ्यास, ब्रह्मचर्य और एकाग्रताका फल है। इन तीनोंकी सहायतासे कोई भी ऐसा अभ्यास कर सकता है। यदि आप चाहें तो आप भी कोशिश करें, शीघ्र ही आपको भी ऐसा अभ्यास हो जायगा।

* * * *

एक अवसरपर राजाजीने प्रश्न किया—स्वामीजी महाराज, विधान या नियम क्या है? स्वामीजीने उत्तर दिया—मन जिस प्रणालीसे कतिपय वस्तुओंको धारण करता है वही विधान है, वही नियम है। बाह्य जगत्में नियमकी कोई सत्ता नहीं है। घटनाओंका ज्ञान हम लोगोंके मनमें जिस प्रकार होता है, उसी ज्ञानको नियम कहते हैं। मन अपने संस्कारोंको विभिन्न किन्तु सजातीय श्रेणीमें विभाग करता है। प्रत्येक श्रेणीके अन्तर्गत विषयोंके साधारण लक्षण एक एक नियमके आकारमें प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार बाह्य वस्तुके संस्कारोंपर बुद्धिकी प्रतिक्रियासे प्रत्येक नियमकी उत्पत्ति होती है।

* * * *

आबूसे चलते समय अपने साथ ही आग्रहपूर्वक राजाजी स्वामीजीको खेतड़ी लिवालाये थे। खेतड़ीमें उनका बड़ा स्वागत किया गया। स्वामीजी राजाजीके आतिथ्यमें रहे। प्रतिदिन धर्म-

चर्चा होती थी। एक दिन राजाजीने स्वामीजीसे प्रश्न किया—स्वामीजी, सत्य क्या है ? उत्तरमें स्वामीजीने कहा—पूर्ण सत्य एक और अद्वितीय है। परन्तु साधारणतः जिसको हम लोग सत्य समझते हैं, वह आपेक्षिक रूपसे सत्य है। ज्यों ज्यों मनुष्यमें ज्ञान-की वृद्धि होती जाती है, त्यों त्यों वह एक सत्यको छोड़कर दूसरे सत्यको ग्रहण करता जाता है। मनुष्य जिसको त्याग देता है, वह मिथ्या नहीं है, किन्तु जिसको ग्रहण करता है, वह और श्रेष्ठतर सत्य है। इस अवस्थामें चरम सत्यकी प्राप्ति नहीं होती। चरम सत्यकी प्राप्ति हो जानेपर आपेक्षिक सत्य-ज्ञानका लोप हो जाता है।

स्वामीजीका उत्तर मार्मिक होता था। राजाजीका प्रेम उनपर दिनोंदिन बढ़ता गया। राजाजीने स्वामीजीसे पदार्थ-विज्ञानका अध्ययन करना आरम्भ किया। स्वामीजीकी सम्मतिसे खेतड़ीमें लेबोरेटरी भी स्थापित की गयी थी। लेबोरेटरी थी तो छोटी परन्तु उसमें आवश्यक सभी उत्तमोत्तम यन्त्र एकत्र किये गये थे। राजाजीके महलकी छतपर एक टेलीस्कोप भी लगाया गया था।

खेतड़ीमें आनेसे स्वामी विवेकानन्दजीको भी एक सुअवसर प्राप्त हुआ। खेतड़ीके राजपण्डित नारायणदासजी * को पूर्ण

* पण्डित नारायणदासजीका जन्म संवत् १९०२ विक्रमाब्द मार्गशीर्ष कृष्णा ८ को अलवर राज्यके 'गाजीका थाना' नामक गांवमें हुआ था और काशीमें उन्होंने पहले प० गोविन्द शास्त्रीजीसे और पीछे महामहोपाध्याय प० शिवकुमार शास्त्रीजीसे शिक्षा पायी। संवत् १९४० में राजा अजीतसिंहजी बहादुरकी गुण-ग्राहकतासे पण्डितजीका खेतड़ीमें आगमन हुआ।

वैयाकरण देखकर उनसे स्वामीजीने अष्टाध्यायी, महाभाष्य आदिका अध्ययन किया। स्वामीजी पण्डितजीका गुरुवत् आदर करते थे और सुदूरवर्ती अमेरिकातकसे पत्र लिखते समय "मेरे अध्यापक" कहकर उनका स्मरण करते थे।

एक दिनकी घटना है। मौसिम गर्मीका था। सूर्यभगवान्के अस्ताचल गामी होनेके अनन्तर निस्तब्धता धीरे धीरे बढ़ रही थी। आकाशमें तारोंकी चमक रात्रिके निविड़ अन्धकारमें अपूर्व शोभा पा रही थी। सुगन्धयुक्त मन्द वायुके झीने झकोरे पसीनेमें तर-बतर लोगोंके शरीरोंको शीतल बना रहे थे। खेतड़ी-नरेश अपने सहचरों सहित उद्यान-स्थित बंगलेमें बैठे हुए थे। उस समय राजाजीने स्वामीजीको भी वहां बुलानेकी इच्छा प्रकट की। आज्ञा पाते ही एक सेवक दौड़ गया और आदरके साथ स्वामीजीको लिवा लाया। आसनासीन होनेपर थोड़ी देर धर्म-चर्चा होती रही। इतनेमें नर्तकियोंका एक दल "सलाम मालूम" करनेके लिये उपस्थित हुआ। राज्यके आश्रितों,सेवकों और किसी पदके आकांक्षी उमीदवारोंके लिये प्रातः एवं सायंकाल राजाजीकी सेवामें अभिवादन करनेके निमित्त उपस्थित होनेका साधारण नियम चला

व्याकरणपर आपका असाधारण अधिकार था। खेतड़ीकी राजकीय संस्कृत पाठशालामें विद्यार्थियोंको आप व्याकरणकी शिक्षा देते थे। पिछले कई वर्षोंसे पण्डितजी फतहपुरमें रायबहादुर सेठ रामप्रतापजी चमड़ियाके संस्थापित 'शेखावाटी संस्कृत महाविद्यालय' में अध्यापन करते रहे। प्रथम राजस्थान ब्राह्मण सम्मेलनके आप सभापति बनाये गये थे। दुःखकी बात है कि गत श्रावण सं० १९९१ में आपका देहावसान हो गया।

आता है। इस अभिवादनका नाम ही "सलाम मालूम करना" है। समागत नर्तकियोंके दलकी एक सुगायिकाने जिसका यौवन-सुलभ चाञ्चल्य प्रौढ़ताकी गम्भीरताके रूपमें बदल चुका था, गाना सुनानेकी आज्ञा मांगी। गाना शुरू होनेको था कि स्वामी विवेकानन्दजी अपने स्थानपर जानेके लिये उठे। वेश्याने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि महाराज, आप अवश्य विराजिये, मैं एक भजन सुनाना चाहती हूं। वह यह ताड़ गयी थी कि मुझे नीच—वेश्या समझकर स्वामीजी यहांसे उठकर जा रहे हैं। इस लिये उसके निवेदनमें कातर-भावकी स्पष्ट झलक दिखलाई दे रही थी। उधर राजाजीने भी आग्रहपूर्वक बैठनेका अनुरोध करते हुए कहा—"स्वामीजी, इसका गाना सुनकर सभी प्रसन्न होते हैं। आप भी सुननेकी कृपा कीजिये। यह भजन सुनावेगी।" स्वामी-जी राजाजीके अनुरोधको टाल न सके और अन्यमनस्क होकर बैठ गये। रातके समय गाना खूब जमता है। स्वामीजी स्वयं संगीत-निपुण सुगायक भी थे। एकान्तमें जब कभी मौज आती थी, वे भगवद्गुणानुवादका कीर्तन किया करते थे। उनके सुमधुर आलापसे सुननेवालोंको मंत्रमुग्ध हो जाना पड़ता था। जो हो, गाना आरम्भ हुआ। गायिकाने ताल स्वरके साथ भक्त कवि सूरदासका एक पद गाया। गानेमें वह तन्मय हो गयी। सुननेवाले भी चित्रवत् बन गये। विलक्षण बिजलीसी दौड़ गयी। भक्त-हृदयकी आत्म-निवेदन-भावना-संपुटित वह पद इस प्रकार है:—

* हमारे प्रभु औगुन चित न धरो,
समदरसी है नाम तिहारो, अब मोहि पार करो ॥ हमारे प्रभु० ॥
इक लोहा पूजामें राखत, इक घर वधिक परो,
पारस गुन औगुन नहिं चितवै कंचन करत खरो ॥ हमारे प्रभु० ॥
एक नदिया इक नार कहावत, मैलो हि नीर भरो,
जब दोऊ मिलि एक बरन भये सुरसरि नाम परो ॥ हमारे प्रभु० ॥
यह माया भ्रम जाल निवारो, सूरदास सगरो,
अबकी बेर मोहि पार उतारो नहि प्रन जात टरो ॥ हमारे प्रभु० ॥

गाना समाप्त हुआ। स्वामीजी गद्‌-गद्‌ हो गये। उनके नेत्रोंसे अश्रु धारा बह चली। स्वामीजीके मुंहसे तत्काल निकल पड़ा—ओह,इस पतिता स्त्रीने एक भक्तका पद गाकर "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"—के तत्त्वको हृदयङ्गम करा दिया है। स्वामीजीने स्वयं लिखा है—वह गाना सुनकर मैं समझा कि क्या यही मेरा

* अंग्रेजीमें स्वामीजीने इस पदका मर्मानुवाद स्वयं यों किया है :—

"O Lord, look not upon my evil qualities !
Thy Name, O Lord, is same sightedness,
Make of us both the same Brahman !
One piece of iron is in the image in the Temple
And another, the knife in the hand of the butcher,
But when they touch the philosopher's stone
Both alike turn to Gold !
So Lord, look not upon my evil qualities !
One drop of water is in the sacred Jumna,
And another is foul inthe ditch by the roadside,
But when they fall into the Ganges,
Both alike become holy.
So Lord, look not upon my evil qualities !
Thy Name O Lord, is same sightedness,
Make of us both the same Brahman !" Etc.

संन्यास है ? मैं संन्यासी हूं और यह एक पतिता नारी है,—यह ऊंच-नीचकी भावना—यह भेद-बुद्धि आज भी दूर नहीं हुई ? सब प्राणियोंमें ब्रह्मानुभूति बड़ा ही कठिन कार्य है। चण्डालकी बातें सुनकर भगवान् शङ्कराचार्यके मनसे भेद-बुद्धि लुप्त हो गयी थी। ऐसी तुच्छ-तुच्छ घटनाओंसे कितने महान् फल उत्पन्न होते हैं, इसकी गणना कौन कर सकता है ?

उस वेश्याको सम्बोधन कर स्वामीजीने कहा—माता, मैंने अपराध किया है। क्षमा करो। मैं तुम्हें घृणाकी दृष्टिसे देखकर यहांसे उठा जाता था। परन्तु तुम्हारा ज्ञान-गर्भ गाना सुनकर मेरी आंखें खुल गयी हैं। इसके बाद उस गायिकाको स्वामीजी माता कहकर सम्बोधन किया करते थे।

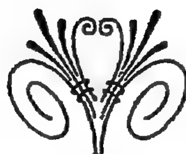
राजाजीने स्वामीजीसे पदार्थ-विज्ञानके साथ साथ कानूनका अध्ययन भी किया था। स्वामीजीके पढ़ानेकी उत्तम शैली और अपनी बुद्धिकी प्रखरतासे उन्होंने थोड़े समयमें ही अच्छी जानकारी प्राप्त करली थी। इसी प्रकार जबतक स्वामीजी खेतड़ीमें रहे तबतक प्रतिदिन ज्ञानवर्द्धक आलोचना होती रही। राजाजी अपनी ज्ञानपिपासा शान्त करनेका प्रयत्न करते रहे।

यह बात शायद बहुत कम लोग जानते होंगे कि स्वामीजीका सर्वजन-विदित विवेकानन्द नाम रखनेवाले राजाजी बहादुर ही थे। स्वामीजी अपना नाम विविदिषानन्द लिखा करते थे। यह बात उनके पुराने पत्रोंसे भी प्रमाणित है। खेतड़ीकी प्रथम यात्रामें एक दिन स्वामीजीके पास राजाजी बैठे हुए थे। उन्होंने

हँसते-हँसते कहा—महाराज, आपका नाम बड़ा कठिन है। बिना टीकाकारकी सहायताके साधारण लोगोंकी समझमें इसका मतलब नहीं आसकता। उच्चारण करना भी सहज नहीं। इसके अतिरिक्त अब तो आपका विविदिषा-काल (विविदिषाका अर्थ है—जाननेकी इच्छा) भी समाप्त हो चुका। स्वामीजीने राजाजीके युक्तियुक्त परामर्शको सुनकर पूछा—आप किस नामको पसन्द करते हैं ? राजाजीने कहा—मेरी समझसे आपके योग्य नाम है—'विवेकानन्द।' स्वामीजीने परमानुरक्त राजाजीकी इच्छाके अनुसार उस दिनसे अपना नाम विवेकानन्द मानकर उसका ही व्यवहार आरम्भ कर दिया। यह नाम कितना प्रसिद्ध हुआ, भारतवासियोंको कितना प्रिय हुआ,—यह लिखकर बतलानेकी आवश्यकता नहीं है। हमारा यह कथन नहीं है कि स्वामीजीकी कीर्तिका कारण उनका यह नया नाम ही था। किन्तु इस घटनाके लिखनेसे हमारा तात्पर्य केवल इतना ही है कि इससे यह जाननेमें सुगमता होगी कि स्वामीजीका राजाजीपर कितना प्रेम था और राजाजी उनका कितना प्रेमपूर्ण आदर करते थे।

यों ही कई महीने बीत गये। राजाजी चाहते थे कि स्वामीजी कुछ दिनों और ठहरें, किन्तु स्वामीजीने जाना ही निश्चित कर लिया। खेतड़ीसे विदा होकर जयपुर होते हुए स्वामीजी गुजरातकी ओर चले गये। प्रवासकालमें उन्होंने अपने स्थानको कोई सूचना नहीं दी थी,इसलिये उनके साथी बड़े चिन्तित थे। उनके अन्यतम गुरुभाई स्वामी अखण्डानन्दजी उन्हें तलाश करते करते जयपुर

पहुंचे। जयपुरस्थित खेतड़ी-भवनसे उन्हें कुशल संवादके साथ स्वामीजीके चले जानेकी सूचना मिली। उन्होंने फिर पीछा किया और गुजरातके माण्डवी स्थानमें स्वामीजीको पाया। कुछ दिनों दोनों गुरुभाई साथ रहे। पश्चात् अखण्डानन्दजी लौट आये। उन्हें उदर-रोग हो गया था। अपने साथियोंकी सलाहसे रोगकी निवृत्तिके लिये स्वामी अखण्डानन्दजी खेतड़ी पहुंचे और प्रायः डेढ़ महीने वहां रहे। राजाजीने उनके लिये सब प्रबन्ध कर दिया था। शेखावाटीके जलवायुने स्वामीजीके स्वास्थ्यको सुधार दिया। नीरोग होकर स्वामी अखण्डानन्दजी खेतड़ीसे स्वस्थान बङ्गालको चले गये।



दूसरा अध्याय



[खेतड़ीमें राजकुमार जयसिंहजीके जन्मोत्सवपर मद्रासले स्वामी विवेकानन्दजीका आह्वान, चिकागो (अमेरिका) में होनेवाली सर्वधर्म-परिषद्के लिये हिन्दूधर्मके प्रतिनिधि रूपसे जानेकी स्वामीजीकी तैयारी, खेतड़ी-नरेश द्वारा यात्राका सुप्रबन्ध, खेतड़ी-नरेशके प्राइवेट सेक्रेटरी मुन्शी जगमोहनलालजीका स्वामीजीको अमेरिकाके लिये विदा करनेको बम्बईतक जाना, स्वामीजीका ३१ मई सन् १८९३ को जहाजसे प्रस्थान]

संवत् १९४९ में राजाजी अपनी राजमहिषी श्रीमती चांपावतजी सहित आगरे पधारे हुए थे। वहीं माघ शुक्ला ९ को उनके पूर्वजोंके पुण्य, शुभचिन्तकोंकी कामना और प्रजाके भाग्यसे राजकुमार जयसिंहजीका जन्म हुआ। इससे पहले दो राजकुमारियोंका जन्म हो चुका था। पुत्रजन्म साधारणतया सभीके लिये सुखकर होता है, परन्तु जहां पुत्र होनेमें विलम्ब हो गया हो, सन्तान हों नहीं, अथवा कन्या ही कन्याकी सन्तान हों, वहां पुत्रजन्म विशेष आनन्ददायक होता है। सभी शुभचिन्तक यह मनाते थे कि राजाजीको पुत्रसुखदर्शनका सौभाग्य प्राप्त हो। स्वामीजीने भी यह मङ्गल-कामना की थी। सबकी प्रार्थना पूरी हुई—आशीर्वाद सफल हुआ। राजाजीने इस शुभ उपलक्षमें बड़ा उत्सव मनानेका प्रबन्ध किया। इस अवसरपर स्वामी विवेकानन्दजीको वे कैसे भूल सकते थे ? उन्हें पता लगा कि स्वामीजी मद्रासमें हैं और विदेश जानेकी

चिन्तामें हैं, उनके अनुरक्त भक्त यात्राके लिये अर्थ-संग्रह करनेके प्रवन्धमें लगे हुए हैं। यह संवाद पाते ही राजाजीने मुन्शी जगमोहनलालजीको मद्रास भेजा। मुन्शीजी शीघ्रतापूर्वक वहां पहुंचे और वड़े प्रयत्नसे उन्होंने बाबू मन्मथनाथ नामक एक बङ्गाली सज्जनका मकान ढूंढ़ निकाला, जहां स्वामीजी ठहरे हुए थे। मुन्शीजीने एक नौकरसे पूछा कि स्वामीजी कहां हैं? उसने स्वाभाविक उत्तर दिया—समुद्रपर गये। प्रेम सदा विपरीत आशङ्का किया करता है। यह प्रेमका स्वभाव है। मुन्शीजीको नौकरसे जो उत्तर मिला था उसका अर्थ था कि स्वामीजी समुद्रतटपर घूमने गये हैं। परन्तु उन्होंने उसका अर्थ यह समझ लिया कि स्वामीजी विदेश जानेके लिये समुद्रमें जहाजपर गये। अपनी इस समझके कारण वे घबड़ा उठे, परन्तु उसी समय उनकी दृष्टि पासवाली कोठरी पर पड़ी। वहां उन्होंने देखा कि स्वामीजीके वस्त्र खूंटीपर टँगे हुए हैं। वस्त्रोंको देखकर मुन्शीजीने समझा कि स्वामीजी अभी गये नहीं,—मद्रासमें ही हैं। यों सोच-विचार कर ही रहे थे कि मकानके सामने एक गाड़ी आकर खड़ी हुई और जब उसमेंसे स्वामीजीको उतरते देखा तब उन्हें संतोष हुआ। मुन्शीजीने आगे बढ़कर अभिवादन किया और स्वामीजीने कुशल समाचार पूछा। स्वामीजीके प्रश्नका यथोचित उत्तर देकर मुन्शीजीने अपने आनेका अभिप्राय बतलाया। पूरी बात ध्यानसे सुनकर स्वामीजीने कहा—३१ मईको अमेरिका जानेका मैंने निश्चय किया है, उसीके लिये प्रबंध करनेमें लगा हुआ हूं। ऐसी दशामें खेतड़ी कैसे चल सकता

हूं ? अब समय कहाँ है ? मुंशीजीने कहा—अधिक नहीं तो एक दिनके लिये ही आप पधारिये। आपका चलना बड़ा आवश्यक है। राजाजीने आग्रहपूर्वक निवेदन किया है। इस अवसरपर आपके न जानेसे राजाजीके मनको बड़ा कष्ट होगा। आप विदेश जानेके लिये जो प्रबन्ध कर रहे हैं, उसके लिये चिन्ता नहीं, राजाजी उसका सब प्रबन्ध कर देंगे। आप एक बार खेतड़ी पधारें। स्वामीजी इस आग्रहको टाल न सके और मद्रासले मुन्शीजीके साथ प्रस्थानित होकर खेतड़ी पहुंचे।

खेतड़ीमें उस समय राजकुमारका जन्मोत्सव ससमारोह मनाया जा रहा था। राजाजीने स्वामीजीका बड़ा समादर किया। कई दिनों ठहरनेके बाद स्वामीजीने बम्बई जानेकी इच्छा प्रकट करते हुए कहा कि अब अमेरिका जानेके लिये प्रबन्ध करना आवश्यक है। अमेरिकाके चिकागोमें सर्वधर्म-परिषद्की बैठक होनेवाली थी। उसीमें भारतवर्षकी ओरसे प्रतिनिधिकी हैसियतसे सम्मिलित होनेके लिये स्वामीजी जा रहे थे। राजाजीने स्वामीजीकी उस यात्राके उद्देश्यकी महत्ता समझ ली थी और इसलिये उन्हें अधिक ठहराना उचित नहीं समझा। जयपुरतक राजाजी स्वयं स्वामीजीको पहुंचानेके लिये गये। वहांसे अपने प्राइवेट सेक्रेटरी मुन्शी जगमोहनलालजीको अमेरिका-यात्राके लिये उचित प्रबन्ध कर देनेका आदेश देकर स्वामीजीके साथ भेजा। स्वामीजी राजाजीकी उदारतासे अपनी यात्राके व्ययकी चिन्तासे मुक्त हुए।

बम्बई पहुंचकर मुन्शीजीने राजाजीकी आज्ञाके अनुसार स्वामीजीके लिये आवश्यक सामग्री एकत्र की, उपयोगी कपड़े बनवाये और जहाजकी प्रथम श्रेणी (फर्स्ट क्लास) का टिकट खरीदा। सन् १८९३ ई० के मई महीनेकी ३१ तारीखको स्वामीजी बम्बई बन्दरसे अमेरिकाके लिये विदा हुए। यद्यपि स्वामीजी स्वामी थे, श्रीरामकृष्ण परमहंसदेवकी कृपासे उन्होंने घर-द्वारके मोहका बन्धन तो तोड़ दिया था, परन्तु थे मनुष्य। जन्मभूमिको छोड़ते समय उनके हृदयकी क्या दशा हुई होगी, यह बात केवल समझनेकी है, लिखनेकी नहीं।





स्वामी विवेकानन्द

तीसरा अध्याय



[सर्वधर्म-परिषद्में स्वामीजीके भाषण—विषयः—(१) स्वागतके उत्तरमें (२) सम्प्रदायोंमें भ्रातृभाव (३) हिन्दूधर्म (४) भूखे, मूर्त्ति-पूजक (५) बौद्धमतके साथ हिन्दूधर्मका सम्बन्ध (६) विदाई ।]

चिकागोमें उस स्मरणीय सर्वधर्म-परिषद्की बैठकें सन् १८९३ ई०के सितम्बर महीनेमें हुई थीं। संसारके इतिहासमें सर्वधर्म-समन्वयका वह पहला विराट् आयोजन था। इस सर्वधर्म-परिषद् अथवा पार्लियामेण्ट आव रिलीजन्सके सभापतिका आसन कार्डि-नल गिबन्सने अलङ्कृत किया था। उपस्थित प्रतिनिधि-समूहमें काषाय-वस्त्रधारी स्वामी विवेकानन्द अपनी विशेषताके कारण सबका ध्यान अपनी ओर खींच रहे थे। उक्त परिषद्की १७ बैठकें हुईं और उनमें कितने ही लोगोंको अनेक प्रश्नोंका उत्तर प्रत्युत्तर देनेके अतिरिक्त स्वामी विवेकानन्दजीके प्रायः सात भाषण हुए। उनके भाषणकी शैली और विषय-प्रतिपादनकी पटुता, उनका वेष-विन्यास और तेजोमय मुखमण्डल,—सभी बातें एकसे एक बढ़कर थीं। सब लोग दङ्ग रह गये थे। स्वामीजीके सर्वधर्म-परि-षद्में दिये हुए उन प्रभावशाली भाषणोंका मर्मानुवाद क्रमानुसार यहां सङ्कलित किया जाता है:—

भाषण पहला ❀

(स्वागतके उत्तरमें)

"अमेरिकावासी बहिनो और भाइयो ! आप लोगोंके हार्दिक स्वागतके उत्तरमें, बोलनेके लिये उठनेसे, आज मेरा हृदय असीम हर्षसे पूर्ण हो रहा है। जगत्के अत्यन्त प्राचीन संन्यासी समाजका प्रमुख होकर मैं आज आप लोगोंको धन्यवाद देता हूं। सब धर्मोंका जनकस्वरूप जो सनातन हिन्दू धर्म्म है, मैं उसका प्रतिनिधि होकर आप लोगोंको धन्यवाद देता हूं तथा सभी सम्प्रदायों और जातियोंके करोड़ों हिन्दू नर-नारियोंकी ओरसे भी मेरा आज आप लोगोंको धन्यवाद है।

मेरा धन्यवाद वे सुवक्ता भी स्वीकार करें, जिन्होंने इस सभामण्डलमें प्राच्य प्रतिनिधियोंको लक्ष्य करके यह मन्तव्य प्रकाश किया कि दूर देश निवासी जातियोंमेंसे जो लोग आज यहां उपस्थित हैं, वे भी समदर्शनके भावको सर्वत्र घोषणा करके यश एवं

❀ सर्वधर्म-परिषद्की पहले दिनकी बैठकमें अन्यान्य वक्ताओंके भाषण हो जानेके बाद स्वामी विवेकानन्दजीका परिचय-प्रदानपूर्वक भाषण करनेके लिये मंचपर आह्वान किया गया। स्वामीजीके खड़े होते ही लोग उनकी ओर विशेष समुत्सुकतासे ताकने लगे। ज्योंही स्वामीजीने महिलाओ और सज्जनो (Ladies and gentlemen) के प्रचलित सम्बोधनको छोड़कर अपना निराला "अमेरिकावासी बहिनो और भाइयो,"—सम्बोधन किया त्योंही तालियोंकी गड़-गड़ाहटसे आकाश गूंज उठा और स्वामीजीने अपना उक्त भाषण सुनाकर जनताको मुग्ध किया।

गौरवको प्राप्त करनेमें समर्थ हुए हैं। मुझे उस धर्म्मका अनुयायी होनेका गौरव है जिसने संसारको समदर्शी बनने तथा सार्वभौम धर्मके ग्रहणकी शिक्षा चिरकालसे दी है। हम लोग समस्त जगत्‌में केवल समदर्शन ही नहीं मानते, किन्तु समस्त मतोंको सत्य कहकर विश्वास रखते हैं। मैं अभिमानपूर्वक आप लोगोंसे निवेदन करता हूं कि मैं ऐसे धर्मका अनुयायी हूं, जिसकी पवित्र भाषा अर्थात् संस्कृतमें अंग्रेजी शब्द Exclusion का कोई पर्य्यायवाची शब्द नहीं है। मुझे इस बातका गर्व है कि मेरा ऐसी जातिसे सम्बन्ध है जिसने इस जगत्‌की समस्त पीड़ित एवं शरणागत अन्यान्य जातियों और मतावलम्बियोंको आश्रय दिया है। मैं अभिमानपूर्वक आप लोगोंसे निवेदन करता हूं कि जिस समय रोमन जातिके अत्याचार-से यहूदी जातिके पवित्र देवमन्दिर तोड़े गये, उस समय शुद्ध इसरेलाइट जातिके कुछ लोगोंको जो दक्षिण भारतवर्षमें भाग आये थे, हम लोगोंने अपनी छातीसे लगाकर रक्खा था। मुझे ऐसे धर्म्ममें उत्पन्न होनेका अभिमान है जिसने पारसी जातिकी रक्षा की और उसका पालन अबतक हो रहा है। मैं आप लोगोंको एक स्तोत्रका एक पद सुनाता हूं, जिसका मैं अपनी बाल्यावस्थासे पाठ करता रहा हूं और जिसे अबतक लाखों मनुष्य प्रतिदिन गाया करते हैं—

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

—शिवमहिम्न।

अर्थात्—"जैसे नदियां भिन्न भिन्न सोतोंसे निकलकर समुद्रमें मिल जाती हैं,उसी प्रकार हे प्रभो ! नाना मतोंके लोग —यद्यपि वे भिन्न प्रतीत होते हैं, वे टेढ़े हैं वा सीधे, परन्तु—तेरी ही ओर जाते हैं।

यह सभी जो जगत्की सबसे महती और बृहती सभाओंमेंसे है, सारे जगत्में गीताके निम्नोद्धृत अद्भुत उपदेशकी घोषणा एवं प्रचार कर रही है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥—गीता ।

अर्थात्—"जो मेरी ओर जिस भावसे आता है मैं उसको उसी भावसे अनुगृहीत करता हूं। हे अर्जुन ! लोग भिन्न भिन्न मार्गों द्वारा बहुत परिश्रमसे मेरी ही ओर आते हैं।"

साम्प्रदायिक धर्म्म-संकीर्णता और इसके फलस्वरूप धर्म्मविषयक उन्मत्तता इस सुन्दर पृथिवीपर बहुत कालतक राज्य भोग चुकी हैं। इनके घोर अत्याचारसे पृथिवी भर गयी। इन्होंने अनेक बार मानुषिक रक्तसे पृथ्वीको सींचा, सभ्यता नष्ट कर दी और समस्त जातियोंको हताश कर डाला। यदि ये भयंकर पिशाच न होते तो मनुष्यसमाजकी अवस्था आजकलकी दशासे कहीं उन्नत होती। पर इनका अन्तिम समय अब आ गया है और मुझे दृढ़ विश्वास है कि जो घन्टे इस सभाके सम्मानार्थ बजाये गये हैं,वे ही घन्टे धर्म्म-उन्मत्तता, खड्ग-प्रहार वा लेखनीकी कठोरता और एक ही लक्ष्यपर जानेवालोंके परस्परके द्वेषकी मृत्युके घंटे सिद्ध होंगे।

भाषण दूसरा*

(सम्प्रदायोंमें भ्रातृभाव)

मैं आप लोगोंको एक छोटीसी कहानी सुनाता हूं। अभी एक सुवक्ताने कहा है, आओ हमलोग एक दूसरेको बुरा कहना बन्द करें। आपलोगोंने उनके इस विचारको सुना। उनको इस बातका बड़ा विचार है कि सदासे लोगोंमें इतनी विभिन्नता क्यों है? परन्तु मैं समझता हूं कि जो कहानी मैं कहनेवाला हूं, उससे आपलोगोंको इस विभिन्नताका कारण मालूम हो जायगा।

एक कूएमें एक मेंडक रहता था। वह बहुत समयसे वहीं रहता था। उस कूएमें ही वह उत्पन्न हुआ और वहीं उसका पालन-पोषण हुआ। तथापि उसका आकार छोटा रहा। हाँ, इस समयके क्रम-विकासवादी (Evolutionist) उस समय वहां न थे जो बताते कि अँधियारे कूएमें रहनेके कारण उक्त मेंडकके आंखें थीं वा नहीं, पर कहानीके लिये यहां मान लेना चाहिये कि उसके आंखें थीं और वह ऐसे परिश्रम एवं उद्योगके साथ जलके छोटे जन्तुओं और कीड़ोंको खाकर उसे साफ रखता था कि जैसे परिश्रम एवं उत्साहसे काम करनेपर कीटतत्ववादियोंकी गौरव-वृद्धि होती है। इसी प्रकारसे वह मेंडक उसी कूएमें रहकर मोटा ताजा हो गया। एक दिन एक दूसरा मेंडक जो समुद्रमें रहता था आया और कूएमें गिर पड़ा।

* सर्वधर्म-परिषद्की पांचवें दिनकी बैठकमें।

कूपमण्डूकने पूछा "तुम कहांसे आये ?"

समुद्रवाले मेंडकने उत्तर दिया "मैं समुद्रसे आया हूं।"

"समुद्र ! भला, वह कितना बड़ा है ? क्या वह भी इतना ही बड़ा है जितना बड़ा मेरा कूआ है ?" यह कहकर उसने एक किनारेसे दूसरे किनारेपर छलांग मारी।

समुद्रवाले मेंडकने कहा—"मेरे मित्र ! भला इस छोटेसे कुएसे क्योंकर समुद्रकी उपमा दी जा सकती है।" मेंडकने दूसरी छलांग मारी और पूछा "क्या इतना बड़ा है ?"

समुद्रवाले मेंडकने कहा—"तुम नासमझकी तरह क्या बक रहे हो ? समुद्रकी तुलना तुम्हारे कूएसे क्या हो सकती है ?" तब कूएवाले मेंडकने चिढ़कर कहा "कूएसे बढ़कर कोई वस्तु नहीं हो सकती। इससे बड़ा कुछ नहीं हो सकता। यह झूठा है,इसे निकाल देना चाहिये।"

बन्धुओ ! ऐसी संकीर्णता हम लोगोंकी विभिन्नताका कारण है। मैं हिन्दू हूं, मैं अपने छोटे कूएमें बैठा हुआ यही समझता हूं कि मेरा ही कूआ समस्त जगत् है। ईसाई लोग अपने क्षुद्र कूएमें बैठे यही समझते हैं कि सारा संसार उसी कूएमें है। मुसलमान लोग अपने तुच्छ कूएमें बैठे हैं और उसीको सारा ब्रह्माण्ड समझ रहे हैं। मैं आप सब अमेरिकावालोंको धन्यवाद देता हूं कि आपने बांधके तोड़नेका यत्न किया है और आशा है कि भविष्यत्में परमात्मा आपलोगोंके इस उद्योगमें सहायता देकर आपका मनोरथ पूर्ण करेगा।

भाषण तीसरा*

(हिन्दुत्व)

वर्तमान कालमें तीन ऐसे धर्म्म हैं जो ऐतिहासिक युगके पूर्व भी विद्यमान थे, यथा हिन्दू, पारसी और यहूदी। इन धर्म्मोंको बड़ेबड़े धक्के लगे परन्तु वे लुप्त न हुए और अभीतक सजीव रहकर अपनी अन्तस्थ शक्तिको सिद्ध कर रहे हैं। किन्तु विचार कीजिये कि जब यहूदीधर्म्म ईसाई-धर्म्मको अपने अंगमें मिलाना तो दूर रहा, स्वयं ही अपनी सर्वविजयी सन्तान द्वारा अपनी जन्मभूमिसे निकाल दिया गया और जब थोड़ेसेही पारसी लोग अपने महान् धर्मकी कथा सुनानेको रह गये, तब भारतवर्षमें सम्प्रदायके पीछे सम्प्रदाय उठे और वेदोक्त धर्मको इस तरह जड़से हिलाने लगे मानो उसे गिराकर मानेंगे। परन्तु जैसे घोर भूकम्पके समय समुद्रका जल कुछ ही पीछे हटकर फिर पहलेसे सहस्रगुण अधिक वेगसे सम्मुखस्थ सब पदार्थोंका ग्रास करता है, वैसे ही इन सम्प्रदायोंके जनकके समान वेदोक्त धर्मने भी कुछ ही पीछे हटकर फिर संघर्ष (कोलाहल) कर अन्तमें उन सबको सर्वथा ग्रास करके अपना विराट् शरीर पुष्ट कर लिया।

आधुनिक विज्ञानकी नवीनसे नवीन आविष्क्रिया जिस वेदान्त-धर्म्मके महान् उच्च भावोंकी प्रतिध्वनि मात्र है उस सर्वश्रेष्ठ वेदान्त ज्ञानसे लेकर सामान्य मूर्तिपूजा एवं इससे सम्बन्ध रखनेवाली

* सर्वधर्मपरिषद्की ६ वें दिनकी बैठकमें निबन्धके रूपमें।

नाना प्रकारकी पौराणिक कहानियोंतकका, यहांतक कि बौद्धोंके अज्ञेयवाद और जैनियोंके निरीश्वरवादका भी हिन्दू-धर्म्ममें स्थान है।

अब प्रश्न यह होता है कि इन भिन्न भिन्न एवं बाह्य दृष्टिसे विरोधी भावोंकी भित्ति या मूल कहां है ? वह साधारण केन्द्र क्या है जिसका अवलम्बन कर यह सब ठहर सकते हैं ? आज मैं यथासाध्य इस प्रश्नका उत्तर देनेका प्रयत्न करूंगा।

वेदकी नित्यता

हिन्दुओंने अपना धर्म आप्तवाक्य वेदसे पाया है। वे लोग वेदको अनादि एवं अनन्त मानते हैं। श्रोताओंको यह बात उप-हासके समान प्रतीत होगी कि एक पुस्तक क्योंकर अनादि एवं अनन्त हो सकती है। परन्तु वेदसे किसी पुस्तक-विशेषका अभि-प्राय नहीं है। उनका तात्पर्य उस संचित आध्यात्मिक सत्य-समूह-से है जिसको भिन्न भिन्न समयपर भिन्न भिन्न ऋषियोंने आविष्कार किया। जैसे मध्याकर्षण-शक्तिका नियम मनुष्य समाज-में प्रकट होनेके पहलेसे ही सर्वत्र विद्यमान था और यदि लोग इस नियमको भूल भी जायँ तो भी यह सदा स्थिर रहेगा। इसी प्रकार आध्यात्मिक जगत्के सब नियम सदासे विद्यमान हैं और रहेंगे। जीवात्मासे जीवात्माका और जीवात्मासे सर्वजन-पिता परमात्माका जो दिव्य, पवित्र एवं आध्यात्मिक सम्बन्ध है वह प्रकाशित होनेके पहले भी था और चाहे हमलोग उसे भूल जायँ तो भी वह वैसा ही रहेगा।

ऋषि

इन आध्यात्मिक नियमोंके आविष्कार करनेवालोंको ऋषि कहते हैं और हमलोग उनको सिद्ध महापुरुष मानते हैं और मैं बड़े हर्षके साथ श्रोताओंको विदित कराता हूं कि इन महात्माओंमें कई एक स्त्रियां भी हुई हैं।

सृष्टि अनादि तथा अनन्त है।

यहां यह बात कही जा सकती है कि उक्त आध्यात्मिक नियमावली 'नियम' होनेके कारण अनन्त वा अन्तहीन हो सकती है, परन्तु उसका आदि कभी अवश्य हुआ। वेदकी शिक्षा यह है कि सृष्टिकी नियमावली अनादि व अनन्त है। विज्ञानशास्त्रने भी यह सिद्ध किया है कि सृष्टि-शक्तिकी समष्टि सर्वकालमें समभावसे रहती है। यदि ऐसा समय रहा हो जब कुछ भी नहीं था तब यह सब प्रादुर्भूत शक्तियां कहां थीं? कोई कोई कहते हैं कि वे कारणावस्थामें ईश्वरमें थीं। यदि यही हो तो ईश्वर कभी कारण वा अप्रकाश अवस्थावाला और कभी कार्य्य वा प्रकाश अवस्थावाला होनेसे परिवर्त्तनशील होगा और जो पदार्थ परिवर्त्तनशील है वह यौगिक वा मिश्र अवश्य होगा। अब यौगिक पदार्थ मात्र नाशवान हैं, अतएव ईश्वर भी नाशवान होगा। यह सर्वथा असम्भव है, यह कभी हो ही नहीं सकता। इस कारण कोई ऐसा काल नहीं था जब सृष्टि न रही हो। यदि आप लोग मुझे एक उपमा देनेकी आज्ञा दें तो मैं कहूंगा कि स्रष्टा और सृष्टि ऐसी दो अनादि एवं

अनन्त समानान्तर रेखाएं हैं जो साथही साथ चल रही हैं। ईश्वर नित्य महाशक्ति-स्वरूप है और सब विषयोंका विधान करनेवाला है। उसीके प्रभाव द्वारा प्रलयसागरसे ब्रह्माण्डपर ब्रह्माण्ड प्रकट होते हैं और कुछ दिन तक चलकर फिर विनाश या अप्रकट अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं। ऐसा नित्यकालसे हो रहा है। हिन्दू लोग प्रतिदिन इसका पाठ करते हैं, यथा—

"सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।"

इसका अभिप्राय यह है कि सूर्य्य और चन्द्रको विधाताने वैसाही बनाया है जैसा कि पहले बनाया था; और यह बात वर्तमान विज्ञान-शास्त्रके अनुकूल है।

आत्मा

मैं यहां खड़ा हुआ हूं और यदि मैं अपनी आंखें बन्द करके सत्ता वा अहम्, अहम्, अहम्का ध्यान करूँ तो मेरे विचारमें क्या आवेगा ? मैं शरीर हूं ऐसा विचार ही आवेगा। यदि यही हो तो क्या मैं जड़ पदार्थके संयोगके अतिरिक्त और कुछ नहीं हूं ? वेद कहते हैं "नहीं।" मैं आत्मा हूँ जो शरीरका आश्रय करके विराजमान है। मै शरीर नहीं हूं। शरीर नाश हो जायगा परन्तु मेरा नाश नहीं है। इस शरीरमें मैं हूं और इसके नाश होनेपर भी मैं रहूँगा और इससे पहले भी मैं था। यह आत्मा शून्यसे सृष्ट नहीं हुई, क्योंकि सृष्टिका तात्पर्य्य भिन्न भिन्न द्रव्योंके संयोग हीसे है और संयुक्त पदार्थका वियोग वा लय कभी न कभी अवश्य होगा। यदि आत्मा सृष्ट हुई तो विनष्ट भी अवश्य होगी। अत-

एव वह सृष्ट पदार्थ नहीं है। फिर देखते हैं कि कोई कोई मनुष्य जन्मसे ही सुख भोगा करते हैं, और उनका शरीर सुन्दर एवं रोगरहित होता है, मन उत्साहपूर्ण होता है और किसी प्रकारका अभाव नहीं है। कोई जन्मसे ही दुःखित रहते हैं, कोई लंगड़े-लूले होते हैं, कोई बुद्धिहीन होते हैं और अपना जीवन महाकष्टमें व्यतीत करते हैं। यदि वे सबही सृष्ट किये हुए हों तो क्या न्यायवान एवं दयालु ईश्वरने एकको सुखी और दूसरेको दुःखी बनाया? ईश्वर ऐसा पक्षपाती क्यों है? यदि इसके उत्तरमें यह कहा जाय कि जो लोग इस जन्ममें दुःखी हैं वे आगामी जन्ममें पूर्णकाम होंगे तो इससे ईश्वरका पक्षपातित्व-दोष नहीं दूर होता। ऐसा सृष्टिकर्त्ता विचार करनेसे सृष्टि-सम्बन्धी नियम-विरोधका कारण कुछ भी अवगत नहीं होता, प्रत्युत एक सर्वशक्तिमान पुरुषकी निठुराईका प्रमाण मिलता है। यह विचार सर्वथा विज्ञान एवं न्यायशास्त्रोंके विरुद्ध है। इससे जन्मके पूर्व अन्यान्य कारण अवश्य होंगे जिससे मनुष्य सुखी और दुःखी होता है। उसके पूर्वके कर्म्म ही ये कारण हैं। क्या सन्तानके मानसिक और शारीरिक स्वभाव मातापिताके स्वभावसे प्राप्त होते हैं—यह कहना युक्तियुक्त नहीं है? यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जीवन-प्रवाह जड़ एवं चैतन्यरूपी दो धाराओंमें प्रवाहित होता है। यदि जड़ और उसके रूपान्तर ही आत्मा, मन, बुद्धि प्रभृतिके कार्य्य साधन कर लेते तो स्वतंत्र आत्माकी सत्ता स्वीकार करनेकी कोई आवश्यकता न होती परन्तु किसी प्रकार यह सिद्ध नहीं होता कि जड़से चैतन्य शक्ति-

का प्रादुर्भाव हुआ। इसलिये यदि मान लें कि एक जड़ पदार्थसे सब कुछ सृष्ट हुआ है तो एक मूल चैतन्यसे सब सृष्टिकार्य्य-निर्वाह होता है, यह स्वीकार करना अवश्य युक्तियुक्त और प्रार्थनीय है। परन्तु यहां इस विषयकी आलोचना करनेकी आवश्यकता नहीं है।

वंशानुक्रमिकता और पुनर्जन्मवाद

हम कभी अस्वीकार नहीं करते कि मनुष्य-शरीरमें बहुतसा पैतृक स्वभाव संचारित होता है। यह स्वभाव सर्वप्रकारसे दैहिक होता है। जो आत्मा जैसे भावको प्राप्त हुई है वह उसी प्रकारके शरीरको आश्रय कर अपने स्वभावानुसार कार्य्य करनेको समर्थ होती है और पूर्वानुष्ठित किसी कर्मसे आत्मा वैसे स्वभावको प्राप्त करती है। जिस आत्माका जिस विषयसे प्रेम है, वह आत्मा "योग्यं योग्येन युज्यते" अर्थात्—कोई योग्य पदार्थ अपने उपयुक्त पदार्थसे युक्त होता है,इस नियमके अनुसार अपने उपयुक्त शरीरमें जन्म ग्रहण करती है। यह नियम विज्ञानशास्त्रके सर्वथा अनुकूल है। क्योंकि विज्ञानशास्त्र कहता है कि स्वभाव अभ्याससे ही उत्पन्न होता है और अभ्यास पुनः पुनः अनुष्ठानका फल है। इसलिये किसी नये जन्मे हुए बालकका स्वभाव उसके पुनः पुनः अनुष्ठित कर्मोंका फल है। उसके लिये वर्तमान जीवनमें उस स्वभावको प्राप्त करना असम्भव है। अतएव वह स्वभाव उसके पूर्वजन्मका है।

पूर्वजन्मस्मरण।

अच्छा, मान लिया कि पूर्वजन्म है, किन्तु पूर्वजन्मकी बातें स्मरण क्यों नहीं रहतीं ? इसका समझना सहज है। मैं इस समय अंग्रेजी भाषामें बोल रहा हूं। यह मेरी मातृभाषा नहीं है और मेरे मनमें इस समय वास्तवमें अपनी मातृभाषाका एक शब्द भी उपस्थित नहीं। परन्तु यदि उनके लानेका प्रयत्न करूं तो वे उमड़ आवेंगे। इससे यह प्रकट होता है कि मनरूपी समुद्रके ऊपरवाले अंशमें जो कुछ रहता है उसका ही मुझे बोध है और हमारी पूर्वार्जित ज्ञान-राशि उस समुद्रके गर्भमें रहती है। प्रयत्न एवं उद्यम करनेसे वह भी ऊपर आ सकती है और हमको बोध भी हो सकता है।*

पूर्वजन्मके संबंधमें यही स्पष्ट प्रमाण है। किसी मतवादकी सत्यता तभी संपूर्ण सिद्ध होती है जब कार्य्यक्षेत्रमें उसका निश्चय कर लेते हैं और हमारे ऋषियोंने डंकेकी चोट इसको प्रत्यक्ष करके देखनेका जगत्को विज्ञापन दे रक्खा है। हम लोगोंने उन विधियोंको जाना है जिनसे स्मृति-समुद्रको नीचे तक मंथन कर सकते हैं, प्रयत्न करो तो तुम्हारे पूर्वजन्मकी सब कथाएं स्मरण हो जायंगी। इसलिये हिन्दुओंका विश्वास है कि वे आत्मा हैं।

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥"

श्रीमद्भगवत्गीता, १ अध्याय, २२ श्लो०।

---

* संस्कार साक्षात् करणात् पूर्वजातिज्ञानम्। पातञ्जलदर्शन

अर्थात्, इस आत्माको न तो तलवार काट सकती है, न अग्नि जला सकती हैं, न जल गला सकता है, और न वायु उसे सुखा सकता है। और यह आत्मा मानो चक्रविशेष है जिसकी परिधि कहीं नहीं है, पर उसका केन्द्र मानों शरीर है और मृत्यु मानों एक शरीरसे दूसरे शरीरमें उक्त केन्द्रके बदल जानेका नाम है। यह आत्मा जड़ नियमोंके वशीभूत भी नहीं है। इसका स्वरूप असीम, मुक्त, पवित्र, शुद्ध और पूर्ण है। पर किसी-न-किसी कारणसे यह स्वयं जड़ पदार्थसे बद्ध हो गयी है और अपनेको जड़ समझती है। दूसरा प्रश्न यह है कि यह मुक्त, पूर्ण और शुद्ध आत्मा इन जड़ पदार्थोंके अधीन कैसे हो गयी? और इस पूर्ण ब्रह्मको कैसे यह भ्रान्ति हो सकती है कि वह अपूर्ण है? कहा जाता है कि हिन्दू लोग इस प्रश्नसे दूर रहते हैं और कहते हैं कि ऐसा हो ही नहीं सकता। और कोई-कोई ज्ञानी आत्मा और जीवके मध्यमें कई एक ईषत्पूर्ण सत्ताकी कल्पना करते हैं और उसको बहुत तरह वैज्ञानिक दीर्घाकार संज्ञा द्वारा प्रसिद्ध करते हैं, पर संज्ञासे किसी वस्तुकी मीमांसा नहीं होती। फिर भी प्रश्न ज्योंका त्यों बना रहता है कि यह पूर्ण पुरुष अपूर्ण कैसे हो गया? इस शुद्ध और पूर्णके स्वभावमें किस प्रकार अणुमात्र भी व्यतिक्रम हो सकता है? परन्तु हिन्दू लोग बहुत निष्कपट हैं, वे लोग मिथ्या तर्ककी सहायता नहीं लेते, किन्तु इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिये वीरतासे प्रस्तुत होते हैं। वे कहते हैं कि हम नहीं जानते। हम नहीं जानते कि किस प्रकार वह पूर्ण पुरुष अपनेको अपूर्ण जड़-

संयुक्त और उसके नियमाधीन समझता है। यह सर्व प्रकार सत्य है। यह सत्य है कि प्रत्येक पुरुषको यह ज्ञान है कि हम शरीर हैं। हमलोग इस बातका समाधान करनेकी चेष्टा नहीं करते कि इस शरीरमें हम क्यों हैं। और "ईश्वरकी इच्छा ऐसी है" कहनेपर भी कोई समाधान नहीं होता है। इसमें हिन्दुओंका कथन है--"हम नहीं जानते," इससे इसमें कुछ भी अधिकता नहीं है।

अब यह समझमें आया कि जीवात्मा नित्य और अमर, पूर्ण और अनन्त है और एक शरीरसे दूसरे शरीरमें (केन्द्रके बदल) जानेको मृत्यु कहते हैं। यह वर्त्तमान शरीर पूर्व कर्म्मके अनुसार है और भविष्यत् शरीर वर्त्तमान कर्म्मके अनुसार होगा और इसी प्रकार बारम्बार जन्म और मृत्युके चक्रमें आत्माएँ घुमाई जा रही हैं।

मनुष्य पापी नहीं, अमृतके पुत्र हैं

अब यहां एक और प्रश्न होता है। जैसे आंधीमें कोई छोटी नाव कभी तो फेनयुक्त लहरोंके ऊपरी झकोरेमें रहती है और तत्पश्चात् ही उनके बीच गहराईमें जा पड़ती है, क्या वैसे ही आत्मा सत् एवं असत् कर्म्मके नितान्त अधीन होकर कभी ऊपर और कभी नीचेको डगमगा रही है? क्या यह दुर्बल सहायहीन आत्मा नित्यप्रवाहित, प्रचण्ड, भीषण एवं गर्ज्जनशील कार्य्य-कारणरूप प्रवाहसे सर्वदा ताड़ित हो रही है? क्या यह आत्मा छोटेसे कीड़ेकी भांति उस भ्रमणशील कारण-चक्रपर स्थापित है जो सन्मुखस्थ सब पदार्थोंको कुचलता जाता है और न तो

अनाथ विधवाके आंसू और न अनाथ बालकके विलापसे ही ठहरता है ? यह विचार करते ही हृदय आशाशून्य हो जाता है; परन्तु यही प्रकृतिका नियम है। तब क्या इसका कोई उपाय नहीं है ? रक्षा पानेका कोई पथ नहीं है ? यही करुण विलाप मनुष्यके आशाशून्य हृदयके निम्नस्तलसे उठा। दीनदयालु विश्व-पिताके सिंहासन तक यह विलाप पहुँचा, तब वह आशा एवं सान्त्वनाके सन्देशरूपसे एक वेदविद् ऋषिके हृदयमें प्रकट हुआ और तत्क्षणात् दैवशक्तिसे अनुप्राणित हो उस महर्षिने खड़े होकर गंभीर घोषणा की और उच्चस्वरसे जगत्के लोगोंको यह हर्षसंवाद सुनाया—

"शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा ।
आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥"

श्वेताश्वतरोपनिषत् २ । ५

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं, आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय

श्वेताश्वतरोपनिषत् ३।८

"अमृतके सन्तान" अहो ! यह कैसा मधुर एवं उल्लासवर्द्धक सम्बोधन है। उसी मधुर नामसे मैं आपलोगोंसे सम्भाषण करना चाहता हूं। आप अमृतके अधिकारी हैं। आपलोगोंको पापी कहना हिन्दुओंको अस्वीकार है। आप ईश्वरकी सन्तान हैं, अमृतके अधिकारी हैं और पवित्र तथा पूर्ण हैं। क्या अपने आपको पापी कहते हैं ? ऐसा होना असम्भव है। मनुष्यको

पापात्मा कहना ही महापाप है, इस विशुद्ध 'मानवात्मामें केवल कलंक लगाना है। बन्धुओ, सिंहस्वरूप होकर आप अपनेको भेड़ क्यों समझते हैं ? इस भ्रान्तिको दूर कीजिये। आप अक्षय, मुक्त, सदासे आनन्दमय आत्मा हैं। आप जड़ पदार्थ नहीं, आप शरीर नहीं। जड़ पदार्थ तो आपका दास है, आप जड़ पदार्थके दास नहीं हैं।

इसी कारण वेद घोषणा कर रहे हैं कि यह सृष्टि भयानक एवं निर्दय नियमोंका प्रवाहस्वरूप नहीं है वा कार्य्य-कारणके नित्यबन्धनमें भी नहीं पड़ी है। परन्तु इन प्राकृतिक नियमोंके आदि वा मूलमें प्रत्येक परमाणु एवं शक्तिके बीचमें एक ऐसा महापुरुष है जिसकी आज्ञासे वायु चलता है, अग्नि प्रज्वलित होती है, मेघ बरसता है और मृत्यु जगत्‌में भ्रमण करती है; यथा—

"भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्य्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः॥"

—कठोपनिषत्, ६।३

उस पुरुषका स्वरूप कैसा है ? वह सर्वव्यापक, शुद्ध, निराकार और सर्वशक्तिमान् है और सबपर उसकी पूर्ण दया है। "तूही हमारा पिता है, तू हमारी माता है, तूही हमारा प्रिय बन्धु है और तूही सम्पूर्ण सामर्थ्यका मूल है; तूही इस विश्वजगत्‌का भार उठाये हुए है, तूही मुझे इस जीवनका क्षुद्र भार उठानेका सामर्थ्य दे"। वैदिक ऋषियोंने ऐसी स्तुति की है। अब हम उसका पूजन कैसे करें ? भक्ति एवं प्रेमसे करें। उसको प्रेमास्पद

समझकर उसे ऐहिक और पारलौकिक वस्तुओंकी अपेक्षा अधिकतर प्रिय समझकर पूजन करना चाहिये। वेदोंमें शुद्ध-प्रेम-सम्बन्धी उपदेशोंमें ऐसा ही वर्णन किया गया है। अब हम लोगोंको इस बातपर ध्यान देना चाहिये कि भगवान् श्रीकृष्णजीने—जिनको हिन्दूलोग ईश्वरका अवतार मानते हैं—कैसे इस विशुद्ध प्रेमको पूर्ण रूपसे प्रकट किया और इसका उपदेश किया। उनका उपदेश है कि मनुष्यको संसारमें कमलके पत्रकी भांति रहना चाहिये। वह जैसे जलमें उत्पन्न होकर भी जलसे आर्द्र नहीं होता, वैसे ही मनुष्यको भी इस संसारमें रहना उचित है; अर्थात् अपने चित्तको ईश्वरमें लगाकर इन्द्रियोंसे कार्य्य करे, परन्तु संसारसे निर्लेप रहे। ऐहिक वा पारलौकिक फलप्राप्तिकी आशाके लिये ईश्वरकी भक्ति करना उत्तम है, परन्तु केवल प्रेमके हेतु ईश्वरकी भक्ति करना अति उत्तम है। उससे प्रार्थना भी यही करना कि—

"न धनं न जनं न सुन्दरीं वनितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि॥

—श्रीकृष्णचैतन्य

अर्थात् हे जगदीश, न तो मैं धन चाहता हूं, न सुत, और न विद्या। यदि तेरी इच्छा हो तो सहस्र वार नर्क भोगनेको भी तय्यार हूं, पर तू मेरी एक विनती मान ले कि तुझमें केवल प्रेमके अर्थ मेरी निष्काम भक्ति बनी रहे।

भारतवर्षके सम्राट्, धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर श्रीकृष्णके एक भक्त

थे। शत्रुओंने उनको राजसिंहासनसे उतार दिया था, इसलिये उनको अपनी पत्नी सहित हिमालयके किसी वनमें रहना पड़ता था। वहीं एकदिन उनकी पत्नीने उनसे पूछा—"हे नाथ, आप तो बड़े धार्म्मिक पुरुष हैं; इसीलिये लोगोंने भी आपका नाम धर्म्म-राज रक्खा है, तथापि आपको इतना दुःख क्यों भोगना पड़ रहा है?" राजा युधिष्ठिरने उत्तर दिया—"हे प्रिये! देखो, हिमालय-शिखर कैसा सुन्दर तथा महान् है, मैं उससे बड़ा प्रेम रखता हूं। वह मुझे कुछ दे नहीं देता; पर महान् और सुन्दर वस्तुसे प्रेम करना ही मेरा स्वभाव है, इसलिये मेरा इसमें अनुराग है। इसी प्रकार ईश्वरमें मेरा प्रेम है, वही सर्व सौन्दर्य्य एवं महत्त्वका मूल है। वही एकमात्र भक्ति और प्रेमका पात्र है। उससे प्रेम रखना ही मेरा स्वभाव है, इस कारण मैं उससे प्रीति रखता हूं। मैं किसी पदार्थके निमित्त उससे प्रार्थना नहीं करता, न उससे कुछ मांगता हूं। वह जहां चाहे मुझे रक्खे। केवल प्रेमहीके लिये मुझे प्रीति करनी चाहिये। मैं इस प्रेममें व्यापार करना नहीं चाहता।"

नाहं कर्म्मफलान्वेषी राजपुत्रि चराम्युत।
ददामि देयमित्येव यजे यष्टव्यमित्युत॥

× × × ×

धर्म्म एव मनः कृष्णे स्वभावाच्चैव मे धृतम्।
धर्म्म वाणिज्यको हीनो जघन्यो धर्म्मवादिनाम्॥

—महाभारत, वनपर्व, ३१।२,५॥

वेद कहते हैं कि आत्मा ब्रह्मस्वरूप है, परन्तु केवल पांचभौतिक द्रव्योंमें बद्ध है; जब बन्धन छूट जायँगे तब ही उसको पूर्ववत् पूर्णता लाभ होगी। इसीलिये इस अवस्थाको मुक्ति अर्थात् जन्म-मृत्यु एवं मानसिक पीड़ा प्रभृतिसे निष्कृति होना कहते हैं। यह बन्धन केवल ईश्वरकी दयासे ही कट सकता है और उसकी दया पवित्र लोगोंपर होती है, अतएव पवित्रता ही उसकी दया प्राप्त करनेका उपाय है। उसकी दया होनेसे पवित्र हृदयमें वह प्रत्यक्ष हो जाता है; तब शुद्ध तथा पवित्र मनुष्य परमात्माका साक्षात्कार करते हैं। तभी हृदयकी कुटिलता नष्ट होती है और वह सरल हो जाता है, यथा—

भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्म्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

—मुण्डकोपनिषत् २।२।८ तथा
श्रीमद्भागवत् १।२।२१

अपरोक्षानुभूति हिन्दूधर्म्मका मूल मंत्र है।

उस समय सब सन्देह दूर हो जाता है और मनुष्य कार्य्य-कारणके कठिन नियमके अधीन नहीं रहता। इसलिये हिन्दूधर्म्मका यही लक्ष्य है; यही मुख्य सिद्धान्त है। हिन्दू-लोग केवल मात्र मत एवं शास्त्र-विचारपर ही भरोसा नहीं रखना चाहते। यदि इस परोक्ष (इन्द्रियद्वारा प्राप्त) ज्ञानसे परे भी कोई अपरोक्ष अर्थात् इन्द्रियातीत ज्ञान है तो वे उसका साक्षात्कार कर लेना चाहते

हैं। यदि जड़ पदार्थसे भिन्न आत्मा कोई वस्तु है; यदि कोई सर्वज्ञ दयालु परमात्मा है तो वे लोग उससे साक्षात्कार करना चाहते हैं। उसका दर्शन न मिलनेसे सारे संशय कभी नष्ट नहीं होते। सब-से उत्कृष्ट प्रमाण जो सनातन-धर्म्मावलम्बी महात्मागण आत्मा एवं परमात्माके विषयमें देते हैं वह यह कथन है—"मैंने आत्माका साक्षात्कार कर लिया है मैंने परमात्माका दर्शन किया है।"ऐसा न होनेसे कोई भी मनुष्य पूर्णत्व लाभ नहीं करता। किसी विशेष उपदेश वा मतको मान लेना ही हिन्दूधर्म नहीं; किन्तु उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति करना ही उसका मुख्य उद्देश्य है। किसी मतपर केवल विश्वास रखना हिन्दूधर्म्म नहीं, किन्तु उसकी साधना और वही वस्तु हो जाना ही मुख्य उद्देश्य है।

इसलिये हम देखते हैं कि उद्योग एवं प्रयत्नसे पूर्णत्व लाभ करना—देवत्व प्राप्त करना—ईश्वरके समीप पहुँचना ही हिन्दु-ओंकी सम्पूर्ण साधन-प्रणालीका लक्ष्य है और ईश्वरके समीपस्थ होकर उसका प्रत्यक्ष दर्शन करना तथा सर्वलोकपिताकी भांति पूर्ण हो जाना ही हिन्दुओंका धर्म्म है।

पूर्णता लाभ करनेपर मनुष्यकी क्या अवस्था होती है ? वह तब अनन्त परमानन्दका उपभोग करता है और परमानन्दधाम ईश्वरको प्राप्त करनेसे सर्वदा पूर्ण आनन्दमें रहता है। यहांतक सभी हिन्दुओंका मत एक है। इस विषयमें भारतवर्षके सम्पूर्ण धर्म्म-सम्प्रदाय एकमत हैं। अब यह प्रतीत होता है कि पूर्णावस्था-हीका नाम तुरीय वा निर्विकल्प अवस्था है और यही निर्विकल्प

अवस्था एकमात्र अद्वितीय और गुणातीत है। इसमें व्यक्तित्व (अपनी सत्ताको अलग मानना) नहीं रह सकता । अतएव जब कोई जीवात्मा पूर्ण या निर्विकल्प अवस्थाको प्राप्त करता है तब वह ब्रह्मके साथ एकीभूत* हो जाता है। इस अवस्थामें जीवात्मा द्वैतज्ञान-शून्य होनेसे स्वयं ही सत्स्वरूप, ज्ञानस्वरूप और आनन्दस्वरूप हो जाता है। हमने कई पाश्चात्य दार्शनिकोंकी पुस्तकोंमें जीवात्माके अपना व्यक्तित्व वा अहङ्कारत्व-त्यागको जड़ावस्था कहकर निर्देश करते पाया है। इससे उनकी अज्ञानता ही प्रकट होती है; क्योंकि कहावत है—"जिसको कभी चोट नहीं लगी है वही चोटके चिन्हको देखकर हँसता है।"

ब्रह्मत्वका प्राप्त करना वा समाधि-अवस्था जड़ावस्था नहीं है।

मैं आपसे कहता हूँ कि यह महोच्च अवस्था जड़ावस्था नहीं है। यदि इस क्षुद्र शरीरका आत्मबोध होनेसे हमें इतना आनन्द होता है तो दो वा तीन अथवा चार वा पांच शरीरोंके आत्मबोधका आनन्द और भी अधिक होगा और इसी प्रकार जब समग्र विश्वका आत्मबोध† हो जायगा तब आनन्दकी चरमा-

* स यो ह वै तत् परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति।

मुण्डकोपनिषत्, ३।२।९

† यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः॥

ईशोपनिषत्, ७।

वस्था प्राप्त हो जायगी। मानवजीवनका यही लक्ष्य है। इस कारण इस असीम विश्वसे एकत्व-लाभके लिये इस दुःखमय पापरूप अहङ्कारका त्याग आवश्यक है। तभी हम मृत्युसे तर सकते हैं जब प्राणमय हो जाते हैं; तभी दुःखसे निवृत्त होंगे जब परमानन्दमें लय हो जायँगे। जब पूर्ण ज्ञानके साथ एकत्व प्राप्त होगा, तभी अज्ञानता दूर हो सकती है। विज्ञानशास्त्र भी इसी सिद्धान्तको पहुँचा है। विज्ञानशास्त्रने यह सिद्ध कर दिया है कि जिस भौतिक शरीरको हम प्रत्यक्ष करते हैं और एकभावापन्न समझते हैं, वास्तवमें वह वैसा नहीं है, यह केवल हमारा भ्रम है; क्योंकि निरवच्छिन्न जड़समुद्रमें तरंगवत् हमारे शरीरका सर्वदा परिवर्त्तन होता है—अर्थात् प्रति मुहूर्तमें नवीन शरीर बनता है। परन्तु हमारा चैतनांश परिवर्त्तनशील वा भ्रमात्मक न होनेके कारण सर्वदा सत्य है। इसलिये "मैं एकमात्र अद्वितीय आत्मा हूँ"—यह अद्वैत-ज्ञान ही युक्तियुक्त सिद्धान्त है।

अद्वैतज्ञान ही धर्म्म-विज्ञानका चरम सिद्धान्त है।

विज्ञानशास्त्र एक मूल वस्तु वा शक्तिके अन्वेषणमें लगा हुआ है और जब कोई विज्ञानशास्त्र उसका आविष्कार कर लेगा तभी वह अपनी उन्नतिकी चरम सीमापर पहुँच जायगा। जब रसायन-शास्त्र उस एक द्रव्यका आविष्कार करेगा जिससे अन्यान्य सब जड़ पदार्थ उत्पन्न हो सकते हैं तभी उसकी उन्नति पराकाष्ठाको पहुँचेगी। और पदार्थ-विज्ञान भी तभी सम्पूर्ण होगा जब ऐसी एक शक्तिको वह जान लेगा जिससे अन्यान्य शक्तियोंका

प्रादुर्भाव हुआ है। धर्म्मविज्ञान भी तभी पूर्णता लाभ करेगा जब उस मूल कारणको देख लेगा जो इस मर्त्यलोकका एकमात्र अमृत-स्वरूप है, जो सर्वदा परिवर्त्तनशील जगत्‌को एकमात्र, अचल, अटल और मूलभित्ति है और जो एकमात्र परमात्मा है और सब आत्माएँ जिसका प्रतिविम्बस्वरूप हैं। इस प्रकारसे लोग बहुईश्वरवाद और द्वैतवाद प्रभृतिसे होकर चरम अद्वैतवादतक पहुंचे हैं। धर्म्मविज्ञान इसके आगे और नहीं चल सकता है। यही सबकी परमगति है, यही विज्ञान-शास्त्रका चरम सिद्धान्त है।

हिन्दूधर्म्म और विज्ञानका सामञ्जस्य

जितने विज्ञानशास्त्र हैं अन्तमें सभी इस सिद्धान्तपर आवेंगे। आजकल विज्ञानशास्त्रमें जगत्‌का सृष्ट किया जाना नहीं कहते, किन्तु जगत्‌का प्रकाश वा प्रादुर्भाव होना बोलते हैं। हमको (हिन्दुओंको) हर्ष है कि जो बात हमारे हृदयमें युगयुगान्तरसे पुष्ट हो रही थी, अब बड़ी दृढ़ और ओजस्विनी भाषामें वही बात सिखाई जाती है—जिसको विज्ञानशास्त्रके नूतन सिद्धान्तने और भी दृढ़तर तथा स्पष्ट कर दिया है।

तथाकथित पौत्तलिकता वा मूर्तिपूजा

अब हम दर्शनशास्त्रके उच्च शिखरसे उतरकर साधारण अज्ञानी लोगोंके धर्म्मविषयकी आलोचना करते हैं। मैं आप लोगोंको पहले ही चिताये देता हूं कि हिन्दुस्थानमें बहुईश्वरवाद नहीं है। प्रत्येक मन्दिरमें यदि कोई व्यक्ति खड़ा होकर सुने तो

उसे ज्ञात होगा कि पूजकगण उन मूर्त्तियोंमें ईश्वरके समस्त गुण यथा सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता इत्यादिका आरोप करते हैं। इसको वहु-ईश्वरवाद नहीं कह सकते और न इसका नाम देवता-विशेषका प्राधान्यवाद हो सकता है। "गुलावको चाहे जिस नामसे पुकारो, पर सुगन्धि वही रहेगी।" केवल नामसे ही किसी वस्तुका पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता।

मुझे स्मरण है कि जव मैं वालक था, एक ईसाई हिन्दुस्थानी लोगोंकी भीड़में खड़ा हो धर्म्मोपदेश कर रहा था। उसके अन्य मधुर उपदेशोंमें एक उपदेश यह भी था कि यदि वह उनकी (हिन्दुओंकी) देवमूर्त्तिको एक छड़ी मार दे तो वह (मूर्त्ति) क्या कर सकती है? श्रोताओंमेंसे एकने झट उत्तर दिया कि भला यदि मैं ही तुम्हारे ईश्वरको गाली दूं तो वह क्या कर सकता है? उपदेशकने कहा कि जव तुम मरोगे तो तुम्हें दण्ड मिलेगा। तव उस ग्रामीणने कहा—"इसी प्रकार जब तुम भी मरोगे तो हमारी देवमूर्त्ति तुम्हें दण्ड देगी।"

वृक्षकी पहचान उसके फलसे होती है। और जव मैंने इन्हीं लोगोंमें जो मूर्त्तिपूजक कहलाते हैं, ऐसे पुरुषोंको देखा है जिनके समान सदाचारी, आत्मविवेकी और भक्तिमान् पुरुष अन्यत्र विरले ही देख पड़ते हैं तो मेरे मनमें विचार उठता है—"क्या पापसे कभी ऐसी पवित्रता हो सकती है?"

विना मूर्त्तिके ध्यान करना असम्भव है।

कुसंस्कार मनुष्यका शत्रु है, परन्तु संकीर्णता उससे भी घोर

शत्रु है। भला, जब ईश्वर सर्वव्यापी है तो ईसाई-धर्मावलम्बी प्रार्थनाके लिये गिरजेमें क्यों जाते हैं? वे क्रुसको क्यों इतना पवित्र मानते हैं? प्रार्थना पढ़ते समय आकाशकी ओर मुँह क्यों करते हैं? कैथोलिक (ईसाइयोंका एक संप्रदाय) गिरजेमें बहुत-सी मूर्त्तियां क्यों रहती हैं? प्रार्थना पढ़ते समय प्रोटेस्टेंट (ईसाइयोंका दूसरा संप्रदाय) लोगोंके मनमें इतनी भावपूर्ण मूर्त्तियां क्यों रहती हैं? भाइयो, जैसे बिना श्वासके हम नहीं जी सकते, वैसे ही बिना जड़ मूर्त्ति के किसी वस्तुका ध्यान वा विचार हम कभी नहीं कर सकते। और संगतिके नियमानुसार यही जड़मूर्त्तियां मानसिक वृत्तियोंका उद्घाटन करती हैं और मानसिक वृत्तियोंसे जड़मूर्त्तियां प्रकट होती हैं। सर्वव्यापकता शब्दका यथार्थ अर्थ जगत्के प्रायः सब मनुष्य नहीं समझते। क्या परमेश्वरकी कोई बाह्य विस्तृति है? यदि नहीं, तो जब हम इस शब्द (अनन्त वा सर्वव्यापी) का उच्चारण करते हैं तो विस्तृत जगत्का ज्ञान मनमें क्यों उदय होता है?

हम जानते हैं कि हमारी प्रकृतिके नियमानुसार परमेश्वरकी अनन्तता (अनन्तभाव) का ध्यान करते समय हमारे अनन्त नीलाकाश या अपार समुद्रके विचार, किसी न किसी कारणसे, आप-ही-आप मनमें उदय होते हैं और जैसे कोई-कोई परमेश्वरकी सर्वव्यापकता एवं पवित्रताका भाव, अपने स्वभावानुसार, गिर्जों, मसजिद तथा क्रुश (सलिया) के साथ सम्बद्ध रखते हैं वैसे ही हिन्दूलोग भी परमात्माकी पवित्रता, नित्यत्व, सर्वव्यापित्व इत्यादि

भावोंको नाना प्रकारकी देवमूर्त्तियोंके साथ सम्बद्ध रखते हैं। परन्तु भेद यह है कि कोई-कोई अपने धर्मसम्प्रदायरूपी सीमामें बन्द रहकर अधिक उन्नति नहीं करते, क्योंकि उनकी रायमें किसी विशेष उपदेशका स्वीकार तथा परोपकार करना ही मुख्य है। किन्तु हिन्दुओंका प्रधान लक्ष्य अपरोक्षानुभूति या आत्माका साक्षात् करना ही है। मनुष्यको देवतुल्य होना चाहिये—आत्मोपलब्धि करनी चाहिये। अतएव मूर्त्ति, मन्दिर, गिरजा वा धर्म्मशास्त्र इत्यादि उसके धर्मजीवनकी बाल्यावस्थाके सहायक मात्र हैं, ये सब उसके चरम लक्ष्य या उद्देश्य नहीं।

परन्तु भ्रमात्मक नहीं है।

साधकको सर्वदा अपने धर्म-पथसे आगे बढ़ना है, उसको कहीं ठहरना न चाहिये। वेदमें वर्णित है कि बाह्य उपासना* तथा मूर्त्तिपूजन प्रभृति प्रथम अवस्थाके सहायक हैं। इससे कुछ उच्च गति प्राप्त करनेमें मानसिक उपासनाका विधान है। परन्तु ईश्वर-साक्षात् करना ही सर्वोत्कृष्ट और चरमावस्था है। जो धर्मानुरागी साधक प्रथम अवस्थामें देवमूर्तिके आगे दण्डवत् करता था वही फिर आत्मज्ञानके लाभ करनेपर क्या कहता है, सुनिये—

"न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकम्।
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः॥

---

* उत्तमो ब्रह्मसद्भावो ध्यानभावस्तु मध्यमः।
स्तुतिर्जपोऽधमो भावो बहिः पूजाऽधमाधमः॥
महानिर्वाण-तन्त्र, ४ उल्लास।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वम् ।
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

—कठोपनिषत्, ५।१५ ।

अर्थात्—"उसको (ब्रह्मको) न तो सूर्य्य प्रकाश कर सकता है, और न चन्द्रमा वा तारे, विद्युत् उसको नहीं प्रकाश कर सकती और न वह जिसे हम अग्नि कहते हैं; यही सब उससे प्रकाशित होते हैं।" इस साधकको अब बाह्य उपासनाकी आवश्यकता न रहनेपर भी अन्य धर्मावलम्बियोंकी तरह वह मूर्त्तिपूजनको पापका मूल नहीं बताता, वरन् उसको धर्म्मोन्नतिरूप मार्गकी एक आवश्यक सीढ़ी समझता है। मनुष्यकी बाल्यावस्था ही यौवनादिकी जन्मदाता है या उन्हें प्रकट करती है। क्या किसी वृद्ध पुरुषको अपनी बाल्यावस्था वा युवावस्थाको बुरा या पापका मूल कहना उचित है ? शास्त्रकी ऐसी आज्ञा नहीं है कि मूर्त्ति-पूजा सब हिन्दू लोगोंका अवश्य कर्त्तव्य है। परन्तु यदि कोई मनुष्य किसी मूर्त्तिके आश्रयसे आत्मज्ञानकी उपलब्धि कर सकता है तो क्या इसे पाप कहना उचित है ? जब वह उस सीढ़ीके भी पार हो जाय तब भी उस मूर्त्तिपूजनकी अवस्थाको भ्रम कहना उचित नहीं है। हिन्दू कहते हैं कि मनुष्य भ्रमसे सत्यकी ओर नहीं जाता, किन्तु सत्यसे सत्यान्तरमें जाता है—नीचेसे ऊपरको जा रहा है। हिन्दुओंके मतानुसार जितने धर्म हैं—अज्ञानियोंके धर्मसे वेदान्तके अद्वैतवादतक वे सब उस अनन्त ब्रह्मके ज्ञान और उपलब्धिके भिन्न-भिन्न उपाय हैं। मनुष्य अपने-अपने जन्म एवं

संस्कारके अनुसार किसी न किसी उपायका आश्रय कर आगे बढ़ता है। अतएव प्रत्येक जीवात्मा गरुड़ (Eagle) के बच्चोंकी तरह ऊंचेसे ऊंचे चढ़ती जाती है और इसी प्रकार अपनी शक्ति बढ़ाती हुई अन्तमें तेजोमय महान् सूर्य्यतक पहुंच जाती है।

बहुत्वमें एकत्व ही प्रकृतिका नियम है, यह बात हिन्दुओंको भली भांति ज्ञात है। अन्यान्य धर्मोंमें कतिपय नियम निर्दिष्ट एवं विधिबद्ध कर दिये गये हैं और उन्हीं नियमोंके अनुसार समस्त जन-समुदायको जबरदस्ती चलाया चाहते हैं। वे समस्त जन-समुदायके सम्मुख एक ही मापके कोट लेकर राम, श्याम, हरि सबको पहननेकी आज्ञा देते हैं। यदि उस मापका कोट राम, श्याम, हरिको ठीक न हो तो वे लोग नंगे ही रहें। हिन्दू लोगोंको यह ज्ञात हो गया है कि निरपेक्ष (Absolute) ब्रह्मका वर्णन, ध्यान और उपलब्धि सापेक्ष (Relative) ज्ञान द्वारा ही होती है और ये मूर्त्तियां, क्रुस और मुसलमानोंका अर्द्ध-चन्द्राकार संकेत केवल आत्मज्ञान लाभ करनेके सहायक हैं। यह बात नहीं है कि इस सहायताकी आवश्यकता सभीको है; पर बहुतोंको है, और जिनको इस सहायताकी आवश्यकता नहीं है उनको भी इसे बुरा कहनेका अधिकार नहीं।

मैं आपलोगोंसे और भी एक बात कहता हूं, हिन्दुस्थानमें मूर्त्तिपूजन कोई भयोत्पादक विषय नहीं है, न वह किसीको कोई बुरा काम सिखलाता है। वरन् इसके विपरीत यह साधारण अधिकारीके लिये सत्यज्ञान-ग्रहणका उपाय है। हिन्दुओंमें भी

कुछ भ्रम है; पर ध्यान रखिये कि उससे वे आप ही अपने शरीर-को पीड़ा देते हैं, दूसरे धर्मावलम्बियोंका गला नहीं काटते। कोई मूढ़ हिन्दू धर्म्मोन्मादवशतः चितापर अपनेको जला दे तो जला दे, पर भिन्नमतावलम्बीके विनाशके निमित्त वह अग्नि (Fire of Inquisition) प्रज्वलित नहीं करता। जैसे डाइनोंको जला देनेसे ईसाई-धर्मपर किसी प्रकारका दोषारोपण नहीं हो सकता वैसे ही अपने शरीरको मूढ़तावश जला देनेसे हिन्दू-धर्ममें किसी प्रकारका दोषारोपण नहीं हो सकता।

हिन्दुओंके मतमें सब धर्म भिन्न-भिन्न पुरुष एवं स्त्रीके भिन्न-भिन्न कारण और अवस्थाके अनुसार बने हैं, पर सब एक ही लक्ष्य अर्थात् ईश्वरोपलब्धिकी ओर जा रहे हैं। प्रत्येक धर्म-का उद्देश्य जड़भावापन्न मनुष्यमें ब्रह्मका प्रकाश होना ही है और वही परमात्मा सबका प्रेरक और उपदेशकर्त्ता है, तो फिर इनमें इतना विरोध क्यों है ? हिन्दू लोग कहते हैं कि बाह्य दृष्टिसे ही ऐसा देख पड़ता है, वास्तवमें यह बात नहीं। एक ही सत्य वस्तु भिन्न-भिन्न अवस्था और प्रकृतिके अनुसार होनेसे भिन्न-भिन्न प्रतीत होती है।

एक ही ज्योति है जो भिन्न-भिन्न रङ्गों द्वारा भिन्न-भिन्न रूपसे प्रकट होती है और यह प्रत्येक भिन्न-भिन्न अवस्थाओंके उपयोगी होनेके लिये अति आवश्यक है। परन्तु इन सब वस्तुओंके भीतर एक ही सत्य विराजमान है, कृष्णावतारमें भगवान्ने हिन्दुओंको यह उपदेश दिया है—

"मयि सर्व्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।
यद्यद्विभूतिमत् सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवागच्छत्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ॥"—गीता ।

"मैं प्रत्येक धर्ममें वैसा ही विराजमान हूं जैसा कि मोतियोंकी मालामें सूत्र रहता है, और जहां कहीं तुम श्रेष्ठता, पवित्रता और अद्भुत शक्तिका विकाश देखो, जिसके द्वारा मनुष्य पवित्रता और उच्च गति लाभ करते हैं, तो जान लो कि मैं ही वहां विराजमान हूं।"

इसका फल यह है कि मैं बड़े साहसपूर्वक कहता हूं कि संस्कृत धर्म्मशास्त्रमें कोई भी यह लिखा हुआ नहीं दिखा सकता कि केवल हिन्दू ही मुक्तिके अधिकारी हैं और अन्य कोई जाति नहीं। व्यास मुनिका वचन है कि "अपनी जाति और सम्प्रदायकी सीमाके बाहर भी सिद्ध विवेकी पुरुष पाये जाते हैं। ("अन्तरादपि तु तद्दृष्टे ।" वेदान्तसूत्र)

एक बात और भी पूछी जा सकती है कि जब हिन्दू लोगोंका दृढ़ विश्वास ईश्वरमें है तो वे लोग बौद्ध-मतमें जो अज्ञेयवाद (Agnosticism) है वा जैन-मतमें जो निरीश्वरवाद (Atheism) है, उनमें क्योंकर श्रद्धा रख सकते हैं? बौद्ध लोग ईश्वरमें विश्वास नहीं रखते हैं यह ठीक है, पर उनका एक मात्र लक्ष्य यही है कि मनुष्योंमें देवत्वका—ईश्वरत्वका—प्रकाश हो। उन्होंने परम पिता परमेश्वरको भले ही न देखा हो,पर उन्होंने ईश्वर—अवतारको तो देखा है। जिसने अवतारको देखा उसने परमेश्वरको भी देखा,

क्योंकि अवतार ईश्वरका ही आदर्श है। हिन्दू मतका यह संक्षिप्त वृत्तान्त है। हो सकता है कि हिन्दू लोग अपना सब अभीष्ट सिद्ध न कर सके हों, पर यदि विश्वजगत्का एक ही धर्म होना सम्भव है तो वह वही होगा जो किसी देश वा कालपर निर्भर न हो, जो असीम ईश्वरके सदृश सीमाबद्ध न हो, जिसकी ज्योति श्रीकृष्ण-के भक्तों और ईसामसीहके प्रेमियों, पापियों वा पुण्यात्माओं पर एक-सा प्रकाश डालती हो, जो केवल ब्राह्मण वा बौद्ध, ईसाई वा मुसलमानके ही लिये नहीं हो, किन्तु इन सबके समुदायके लिये हो और जिसमें सबकी उन्नतिके पथ खुले हों और जो अपनी अपक्षपातितासे अपने अनन्त बाहुओं द्वारा उन निकृष्ट मनुष्योंसे लगाकर जिनकी बुद्धि अब भी अधोगामिनी है, उच्च हृदयके विवेकी पुरुषोंतक जो समाजके शिरोमणि और पूज्य हैं, सबको अपनी छातीसे लगावे और शरण दे।

वह ऐसा धर्म होगा जो परपीड़ा और विरोधभावसे रहित हो और समस्त नरनारियोंमें परमात्माको देखे और जिसका उद्देश्य समस्त जातिको आत्मोपलब्धिके अर्थ सब प्रकारसे सहायता देनेका हो। यदि ऐसे उदार धर्मका दान करोगे तो समस्त जातियां तुम्हारी अनुगामिनी होंगी। अशोक महाराजकी सभा बौद्ध मतकी सभा थी। अकबरकी सभा भी जिसका अभिप्राय अति उत्तम और वाञ्छनीय था, फलदायक नहीं हुई। प्रत्येक धर्ममें एक ही परमात्मा विराजमान है—समस्त जगत्में यह घोषणा करना अमेरिकाके ही हिस्सेमें था।

मैं उस परमात्मासे जिसे हिन्दू लोग ब्रह्म कहते हैं, पारसी लोग अहर्मन्द कहते हैं, बौद्ध लोग बुध करके मानते हैं, यहूदी जिसे अहोमा कहकर पुकारते हैं, ईसाई लोग जिसे स्वर्गस्थ पिता कहके मानते हैं—प्रार्थना करता हूं कि वह आप लोगोंको इस महत् उद्देश्यके पूर्ण करनेकी शक्ति दे। पूर्व दिशासे तारा (बुद्धदेव और उनका धर्म) उदय हुआ और धीरे धीरे पश्चिम दिशाकी ओर कभी टिमटिमाते हुए, कभी प्रकाशके साथ आया और इसी प्रकार सम्पूर्ण पृथिवीके चारों ओर घूमकर फिर पूर्व दिशामें टसिफु (Tasifu) नदीके किनारे सहस्र गुण प्रकाशके साथ उदय हुआ। हे स्वाधीनताकी मातृभूमि कोलम्बिया (अमेरिकाका दूसरा नाम) तू धन्य है ! यह तेरे ही भाग्यमें था कि तूने अपने पड़ोसियोंके रक्तसे अपने हाथ नहीं रंगे। तूने अपने प्रतिवेशियोंका धन लूट-कर अपनेको धनी बनाना अच्छा न समझा और यह तेरे ही भाग्यमें है कि प्रीति—अविरोधका झण्डा लेकर तू सभ्य जातियोंमें अग्रसर हो।

भाषण चौथा⊛

(भारत धर्म्मका भूखा नहीं)

ईसाइयोंको चाहिये कि सत्समालोचनाके लिये सदा तय्यार रहें, और मुझे विश्वास है कि यदि मैं आपलोगोंके कुछ दोषोंकी विवेचना करूं तो आपलोग बुरा न मानेंगे। हे ईसाई धर्माव-

⊛ सवधर्मपरिषद्के १० वें दिनकी बैठकमें।

लम्बी सुहृद्वरो ! मूर्त्तिपूजकोंकी आत्माके उद्धारके लिये उनके पास धर्म-प्रचारक भेजनेमें तो आप बड़े अनुरागी हैं, परन्तु जब वे अन्न बिना मर जाते हैं तब उनके शरीरके उद्धारके लिये कोई उपाय आप क्यों नहीं करते ? हिन्दुस्थानमें दुर्भिक्षके समय सहस्रों नर-नारी क्षुधासे पीड़ित होकर मर जाते हैं, किन्तु आप इस बात-पर तनिक ध्यान नहीं देते। समस्त हिन्दुस्थानमें धर्म-मन्दिर (गिरजाघर) बनानेमें आप बड़े उद्योगशील हैं, परन्तु हिन्दुस्थानमें धर्मका अभाव नहीं है—धर्मकी कमी नहीं है। उनकी हाय हाय केवल रोटीकी है। हिन्दुस्थानके लाखों लोग शुष्क कण्ठसे 'अन्न' 'अन्न' चिल्ला रहे हैं। वे मांगते हैं अन्न, और हम उन्हें देते हैं पत्थर ! क्षुधातुरोंको धर्मका उपदेश देना वा आध्यात्मिक ज्ञान सिखाना मानो उनका उपहास करना है। भारतवर्षमें यदि कोई धर्मशिक्षक वेतन-प्राप्तिके लिये धर्मका उपदेश करे तो वह निन्दित हो जाय और लोग उसपर थूकने लगें। मैं यहां कालपीड़ित दरिद्र लोगोंके लिये भिक्षाके निमित्त आया हूं। परन्तु मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया कि ईसाई राज्यमें मूर्त्तिपूजकोंके लिये ईसाई धर्मावलम्बियोंसे सहायता पाना कितना कठिन है।*

---

* इस व्याख्यानके पश्चात् सनातनधर्मके पुनर्जन्मवादपर स्वामीजीने भाषण दिया था। अनन्तर सर्वधर्मपरिषद्की १२ वें दिनकी बैठक २२ सितम्बर शुक्रवारको हुई थी। उसमें हिन्दू-धर्मके सम्बन्धमें ही देरतक भाषण हुआ। उस दिन स्वामीजीने सनातनधर्म-सम्बन्धी अनेक बातें कहीं। विभिन्न धर्मानुयायी स्त्री-पुरुषोंने बड़ी उत्सुकताके साथ सैकड़ों प्रश्न उनसे

भाषण पांचवां*

(बौद्धधर्म्मके साथ हिन्दूधर्म्मका सम्बन्ध)

सभापति महाशय, मेरे भाइयो और मेरे सहायको ! आप लोगोंने सुना है कि मैं बौद्धधर्म्मावलम्बी नहीं हूं, परन्तु यदि मैं अपनेको ऐसा कहूं तो भी कोई हानि नहीं। चीन, जापान तथा सीलोनके अधिवासी उस महापुरुष लोकगुरु बुद्धकी शिक्षाके प्रति-पालक हैं, परन्तु हिन्दू लोग उसे ईश्वरका अवतार मानते हैं। आपको ज्ञात है कि मैं बौद्धधर्म्मका समालोचक हूं, परन्तु इसका उद्देश्य दोष प्रकट करनेका नहीं। जिसको हम ईश्वरका अवतार मानते हैं, उसके गुणदोष-विचारसे ईश्वर बचावे। परंतु भगवान् बुद्धके विषयमें यह मत है कि उनके शिष्योंने उनकी शिक्षाओंको ठीक ठीक नहीं समझा। हिन्दूमत अर्थात् वेदोक्त धर्म और वर्त्तमान कालके बौद्धमतमें वैसा ही सम्बन्ध है जैसा कि यहूदी मत और ईसाई मतमें है। ईसामसीह यहूदी संतान थे और शाक्यमुनि (बुद्धदेव) हिन्दू। परंतु भेद इतना है कि यहूदियोंने ईसाको केवल निकाल ही नहीं दिया, किंतु सूली(क्रुश) पर चढ़ाकर उनकी हत्यातक कर डाली और हिन्दुओंने बुद्धको अवतार माना और अभीतक उनका पूजन करते हैं। परन्तु प्रचलित

किये और स्वामीजीने भी बड़ी निपुणताके साथ उन प्रश्नोंका उत्तर देकर उनकी शंकाका समाधान किया था।

* सर्व धर्मपरिषद्की १६ वें दिनकी बैठकमें।

बौद्धमतमें और भगवान् बुद्धकी शिक्षाओंमें जो वास्तविक भेद हम दिखलाना चाहते हैं वह विशेषतः यह है कि शाक्यमुनिने कोई नयी शिक्षा देनेके लिये अवतार नहीं लिया था। वह भी ईसाके समान धर्म्मकी रक्षाके लिये आये थे—न कि धर्म्मका नाश करनेके लिये। जैसे ईसा यहूदियोंकी श्रद्धा नूतन धर्मपुस्तक (New testament) पर और ईसाइयोंकी पुरातन धर्मपुस्तक (Old testament) पर स्थापित करना चाहते थे, पर यहूदियोंने इस पुरातन धर्मपुस्तक (Old testament) की पूर्णता नहीं समझी, उसी प्रकार बौद्धों ने बुद्धकी शिक्षाको हिन्दूधर्म्मके सत्य (वेद) की पूर्णता नहीं समझी। मैं फिर भी आप लोगोंसे कहता हूं कि शाक्यमुनि विनष्ट करने नहीं आया, हिन्दूधर्मकी स्वाभाविक परिणति अर्थात् स्वाभाविक विकास प्राप्त होनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसीको उन्होंने दिखलाया।

हिन्दूधर्म्मके दो भाग हैं—एक कर्मकाण्ड और दूसरा ज्ञानकाण्ड। विशेषकर इसी ज्ञानकाण्डका पठनपाठन संन्यासी लोग किया करते हैं। इसमें जातिभेद नहीं है। भारतवर्षमें उच्च और नीच दोनों प्रकारकी जातियोंके लोग त्यागी हो सकते हैं और फिर उनमें जातिभेद नहीं रहता। धर्ममें जातिभेद नहीं है; जाति तो एक सामाजिक बन्धनमात्र है। शाक्यमुनि स्वयं संन्यासी थे, और यह उनके तेज एवं माहात्म्यका फल है कि उन्होंने अपने विशाल हृदयसे वेदके गुह्य आशयोंको जानकर उनका प्रचार समस्त जगत्में किया। इस जगत्में वह सबसे पहला पुरुष हुआ है जिसने

धर्म्मोपदेशकोंकी प्रथा चलायी; इतना ही नहीं, किन्तु भ्रान्त मनुष्योंको अभ्रान्त सत्यधर्ममें ले आनेका विचार भी पहले पहल उन्हींके मनमें हुआ।

इस महान् पुरुषके माहात्म्यका कारण उसकी सब प्राणियों-पर—विशेषकर अज्ञानियों और दीन जनोंपर अतिशय दया थी। उसके कोई कोई शिष्य ब्राह्मण थे। जिस समय बुद्ध भगवान् धर्मो-पदेश कर रहे थे उस समय भारतवर्षकी साधारण भाषा संस्कृत न रह गयी थी। संस्कृत उस समय केवल पण्डितोंकी—पुस्तककी भाषा थी। बुद्धदेवके कुछ ब्राह्मण शिष्योंने उनके उपदेशोंका अनुवाद संस्कृत भाषामें करना चाहा था, पर बुद्धदेव उनसे सदा यही कहते थे—"मैं अधम और साधारण जनोंके लिये आया हूं, मुझे उन्हींकी भाषामें शिक्षा देने दो।" इसी कारण अबतक उनके उपदेश भारतवर्षकी उसी समयकी भाषा(प्राकृत) में पाये जाते हैं।

दर्शनशास्त्रकी पदवी कितनी ही ऊंची क्यों न हो, पर जबतक कि इस लोकमें मृत्यु और मनुष्योंके हृदयमें निर्बलता है, जबतक मनुष्य अपने हृदयकी निर्बलताके कारण विलाप करता रहेगा, तबतक ईश्वरमें उसका विश्वास और श्रद्धा रहेगी।

दर्शनशास्त्रके विषयमें उक्त महापुरुषके शिष्योंने वेदकी अनादि चट्टानपर बहुतेरा सिर पटका, पर वे उसे तोड़ न सके, वरन् साधा-रण लोगोंसे अक्षर परमेश्वरको—जिसपर प्रत्येक नरनारीका प्रेम और भक्ति थी—उठा ले गये, अर्थात् उसकी श्रद्धा मिटा दी और

इसका फल यह हुआ कि यह मत भारतवर्षमें मृत्युको प्राप्त हो गया और अब उसी भारतवर्षमें जो इस मतकी जन्मभूमि है एक भी ऐसी स्त्री अथवा पुरुष नहीं है जो अपने आपको बौद्धधर्म्मावलम्बी कहे।

परन्तु इसके साथही ब्राह्मण-धर्मकी कुछ हानि भी हुई, जैसे कि समाजके संस्कारका उत्साह, प्रत्येक प्राणीके साथ सहानुभूति (Sympathy) करुणा और उदारता और बौद्धधर्मका पतितोद्धारके विषयमें अपूर्व उत्साह आदि उससे अलग हो गये—जिन्होंने भारतवासियोंको ऐसा उच्च हृदय बना दिया जिसके कारण यूनानी इतिहास-लेखकको, जिसने भारतवर्षका वृत्तान्त लिखा है, यह लिखना पड़ा कि कोई हिन्दू मूढ़ वा मिथ्या बोलनेवाला नहीं दिखायी देता और कोई हिन्दुस्थानी स्त्री कुलटा अर्थात् पातिव्रतहीन नहीं पायी जाती।

हे बौद्धगण! हमलोग न तो आपलोगोंके बिना रह सकते हैं और न आप हमलोगोंके बिना रह सकते हैं। तब निश्चय रक्खो कि हमारे परस्पर वियोगने स्पष्ट प्रकट कर दिया है कि न तो आपही ब्राह्मणोंके ज्ञान और बुद्धिके बिना ठहर सकते हैं और न हमलोग ही आपके उच्च हृदयकी सहायताके बिना रह सकते हैं। बौद्ध और ब्राह्मणोंका परस्पर-वियोग ही भारतवर्षकी वर्तमान अधोगतिका कारण हुआ है। इसी विभेदसे वर्तमान भारत तीस करोड़ भिक्षुकोंकी आवासभूमि हो रहा है और इसी कारण भारतवर्ष एक सहस्र वर्षसे अन्य विजातियोंका क्रीतदास हो रहा है। इसी

कारण ब्राह्मणोंके अद्भुत ज्ञानसे उस महापुरुष(बुद्धदेव) के हृदय, उच्च आत्मा और अद्भुत करुणाकारी बलको मिलाकर एक करना चाहिये।

भाषण छठा⊛

(विदाई)

जगत्में सब धर्म्मोंके सम्मिलनकी सम्भवपरता आज पूर्ण रूपसे सिद्ध हुई। जिन्होंने इसे स्थापन करने और इसकी सिद्धिके अर्थ विशेष प्रकारसे श्रम और उद्योग किया, परम दयालु परमेश्वरने उनकी सहायता की और उनके निस्स्वार्थ परिश्रमका शुभ फल प्रदान किया।

उन महानुभावोंको मेरा धन्यवाद है जिनके उदार हृदय और सत्यानुरागने प्रथम ऐसी अद्भुत कल्पनाको जन्म दिया और उसे कार्य्यमें परिणत किया। मैं उस सर्वलोक-सम्मत उदारभाव-समूहका धन्यवाद करता हूं जिसके द्वारा यह सभामञ्च वर्षाकी भान्ति प्लावित हुआ है। मैं ज्ञानालोकसे आलोकित उन श्रोताओंको धन्यवाद देता हूं जिन्होंने मुझपर बराबर कृपा की है और जिन्होंने उन युक्तियोंको आदरपूर्वक स्वीकार किया है जिनसे मतमतान्तरके झगड़े मिट सकते हैं। इस सुश्रृंखल(धार्म्मिक मतों-की) स्वर-श्रेणीमें कभी-कभी विश्रृंखल भाव भी पाया गया है।

⊛ सर्वधर्मपरिषद्की १७ वें दिनकी बैठकमें अन्तिम दिन (ता० २७ सितम्बर सन् १८९३ ई०)

मेरा धन्यवाद उनको भी (जो झगड़े उठाते हैं) पहुंचे क्योंकि उनके किञ्चित् विशृंखल भावने साधारण शृंखल भावको मधुरतर बना दिया। मतमतान्तरकी एकताके विषयमें बहुत कुछ कहा जा चुका है। इस समय मैं अपने सिद्धान्तपर जोर नहीं देता, परन्तु यदि कोई महाशय यह आशा रक्खें कि अन्य मतोंको निर्ध्वंश करके एक मत विजयी हो जाय तो एकता हो सकती है, तो मैं उनको यह उत्तर देता हूं कि—"भाई, तुम्हारी यह आशा असम्भव है।" क्या मैं चाहता हूं कि ईसाई लोग हिन्दू हो जायं? कदापि नहीं, ईश्वर ऐसा न करे। क्या मेरी यह इच्छा है कि हिन्दू वा बौद्ध लोग ईसाई हो जायं? ईश्वर इस इच्छासे बचावे। बीज भूमिमें बो दिया गया और मृत्तिका, वायु और जल उसके चारों ओर हैं हीं, तो क्या वह बीज मिट्टी हो जाता है वा वायु वा जल हो जाता है? नहीं वह वृक्ष ही होता है। वह अपने नियमहीसे बढ़ता है और वायु, जल और मिट्टीसे मिलकर वृक्षांश बनता हुआ एक बड़ा वृक्ष हो जाता है।

यही अवस्था धार्म्मिक मतोंकी भी है। ईसाईको हिन्दू वा बौद्ध नहीं होना चाहिये, न हिन्दू वा बौद्धको ईसाई होना चाहिये। पर प्रत्येक मतको चाहिये कि अन्य मतोंके सारको ग्रहण करके पुष्टि लाभ करे और एकत्व (समता) की रक्षा करता हुआ अपनी अपनी प्रकृतिके अनुसार वृद्धिको प्राप्त हो।

इस धर्म्मपरिषद्ने जगत्के लिये जो घोषणा की है वह यह है। उसने यह सिद्ध कर दिखलाया है कि शुद्धता, पवित्रता

और दयापरता किसी विशेष धर्म्मसंस्था (Church) की सम्पत्ति नहीं, और प्रत्येक धर्म्मसम्प्रदायमें अति उत्तम और प्रशंसनीय पुरुष और स्त्रियां हुई हैं।

अब इन प्रमाणोंके आगे भी यदि कोई अपनीही रक्षा और दूसरेके विनाशकी कल्पना करे तो उसके विषयमें मैं हृदयसे खेद प्रकाश करता हूं और उसे बतला देता हूं कि शीघ्र ही प्रत्येक धर्मकी ध्वजापर उनकी अनिच्छा होनेपर भी यह लिखा जायगा—"परस्पर सहायक बनो, विरोध न करो, रक्षक हो, विनाशकारी न बनो, एकता और शान्ति हो, फूट वा कलह दूर हो।"



चौथा अध्याय



[स्वामीजीके भाषणोंकी सफलताका संवाद पाकर खेतड़ी-नरेशका स्वामीजीको अभिनन्दन-पत्र-अर्पण, और स्वामीजीका मार्मिक उत्तर। खेतड़ी-नरेशके नाम स्वामीजीके पत्रोंमेंसे ३ पत्र, स्वामीजीका खेतड़ी-नरेशको अमेरिकासे एक फोनोग्राफ और उसके रेकार्डमें अपना सन्देशा भेजना।]

सुनने और पढ़नेवालोंने उक्त भाषणोंके लिये स्वामीजीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। स्वामीजीकी सफलताका संवाद पाकर राजाजी बहादुरको वर्णनातीत आनन्द हुआ और इसके लिये खास तौरसे उन्होंने अपने दरबार (राजसभा) की विशेष बैठक कर निम्नलिखित आशयका पत्र स्वामीजीका अभिनन्दन करनेके निमित्त अमेरिका भेजा:—

मान्यवर स्वामीजी,

अमेरिकाके चिकागो शहरकी भिन्न-भिन्न धर्मानुयायियोंकी विराट् सभामें आपने हिन्दू-धर्मका महत्त्व वर्णन कर भारतवर्षका मुखोज्ज्वल किया है। अतएव आपके प्रति सम्मान प्रदर्शित करने एवं धन्यवाद देनेके उद्देश्यसे यह दरबार किया गया है। इस दरबारके सभापतिके अधिकारसे अपनी एवं अपनी प्रजाकी ओरसे आपको अमेरिकामें हिन्दूधर्मका गौरव बढ़ानेके लिये आन्तरिक धन्यवाद देनेमें मैं आज असीम आनन्दानुभव कर रहा हूं।



खेतड़ीके राजपण्डित
स्वर्गीय पं० नारायणदासजी शास्त्री

हिन्दूधर्मके साधारण सिद्धान्तोंका अंग्रेजी भाषामें जिस खूबीसे आपने वर्णन किया है, मैं नहीं समझ सका कि उससे बढ़कर स्पष्टतासे कोई भी व्यक्ति भाषाके स्वाभाविक अभावों एवं बन्धनोंके कारण प्रकट कर सकता है। विदेशमें आपके ऐसे भाषण हुए हैं और विदेशियोंके साथ आपने ऐसा व्यवहार किया है कि उसके प्रभावसे भिन्न-भिन्न देशों तथा भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके (अनुयायी) मनुष्योंमें आपके प्रति आदर एवं प्रशंसाके भाव आगये हैं। केवल यही नहीं, बल्कि आप उनके साथ इस प्रकार हिल-मिल गये हैं कि आपको अपने निःस्वार्थ उद्देश्यकी पूर्तिमें पूरी सहायता मिलेगी। इसके लिये हम आपकी जितनी प्रशंसा करें, थोड़ी है। आपने अनेक कष्ट सहन कर अमेरिका जा वहां सर्वधर्मपरिषद्में जिस प्राचीन धर्मको हम अपना प्राण समझते हैं, उसके सिद्धान्तोंकी व्याख्या की है। उसके लिये इन टूटे-फूटे शब्दों द्वारा यदि अपनी कृतज्ञता प्रकट न करें तो हमलोग कर्तव्यच्युत समझे जायंगे। भारतवर्षको इस बातका गर्व है कि उसने आप जैसे प्रतिभाशाली व्यक्तिको अपना प्रतिनिधि बनानेका सौभाग्य प्राप्त किया है। जिन सत्पुरुषोंने सर्व धर्मोंकी महासभाका संघटन करनेमें सफलता प्राप्त की है और जिन्होंने उत्सुकतापूर्वक आपका स्वागत किया है, उन्हें भी धन्यवाद देना हमारा कर्तव्य है।

आप सात समुद्र पार उस महादेशमें एक अपरिचित व्यक्ति थे, परन्तु आपका उन्होंने कैसे उत्साहके साथ स्वागत किया!

किस सहृदयतासे आपके साथ व्यवहार किया ! उन्होंने आपके अनुपम गुणोंको पहचाना है—उनपर वे मुग्ध हो गये हैं । यह भाव उनके उत्कृष्ट स्वभावका द्योतक है। ठीक है, जौहरी ही जवाहिरकी कद्र करता है।

इस पत्रकी बीस प्रतिलिपियां (नकलें) मैं इस पत्रके साथ भेजता हूं और सविनय प्रार्थना करता हूं कि आप इस पत्रको तो अपने पास रक्खें और नकलें अपने मित्रोंमें बांट दें।

ता० ४ मार्च सन् १८९५ ई० } भवदीय अभिन्नहृदय
(राजा) अजीतसिंह(बहादुर)
खेतड़ी।

* * *

उक्त पत्रका स्वामी विवेकानन्दजीने जो सारगर्भित उपदेश-पूर्ण उत्तर भेजा था, वह इस प्रकार है –

स्वामीजीका उत्तर

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानमधर्म्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतां
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।

महाराज,

यह भगवान्‌की उक्ति है। वह अनन्त पुरुष उक्त वाक्यकी

घोषणा करके पापका नाश करता है और उसीने पुण्य कर्म्मोंके प्रति इस विश्वमें आग्रह उत्पन्न किया है।

यद्यपि यह सच है कि भगवान्‌की प्रत्यक्ष लीलाका वर्णन कई बार अनोखे काव्यके रूपमें हमारी आंखोंके सामने आया है और उसने हमारे श्रुति-गह्वरों (कानों) में अमृतकी वर्षा की है, परन्तु उक्त महावाक्यका प्रत्येक अक्षर भगवान्‌की शक्तिके प्रभावसे उपयुक्त क्रिया-साधनमें कुछ भी अन्तर उपस्थित नहीं करता। इस विश्वकी पहिली अवस्था गुण-शक्तिका (Qualitative force) एकत्व (Sameness) है। जबतक मनुष्य, उस प्राथमिक पूर्ण एकत्वको प्राप्त नहीं करता तबतक उस एकत्वकी प्राप्तिके लिये वह युद्ध और बार बार (इस संसारमें) आत्म-प्रकाश करता है। इस संसारमें जो कुछ भेद-भाव है, वह सब उसी एकत्व—समरसत्वको (Homogeneity) पानेके लिये है। जितने मनुष्य, जितने धर्म्म और उनकी शाखा-प्रशाखाएं हैं, उन सबकी गति एक है—लक्ष्य एक है।

इस संसारमें—इस सर्वविधायक साम्यमय राज्यमें इस अवस्था-की प्राप्तिके लिये ही प्रत्येक जाति आश्चर्यजनक आग्रहपूर्वक उसके साधन-निमित्त सभी कार्योंका अनुष्ठान करती है। वे विशिष्ट आग्रह ही उस जातिकी विशेषताके परिचायक हैं। उसी विशेषताके द्वारा जातियां सर्वसाधारणका पार्थक्य (अलगाव) निश्चय करती हैं। यही विशेषताएं हैं—इन्हीं सब विशेषताओंका सन्निवेश हिन्दू-धर्म्ममें है, क्योंकि भारतवर्ष धर्मभूमि है।

धन, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा या अन्य कोई सुख-सम्भोग ही जिनके जीवनका एकमात्र लक्ष्य है और उसीकी प्राप्तिके लिये जिनकी सब चेष्टाएं होती हैं, अदम्य विक्रम और व्यर्थका रक्तपात करना ही जिनकी शक्तिका कर्तव्य है—जिनकी यह धारणा है, जिनका यह विश्वास है कि इस जीवनका ऐहिक इन्द्रियजात सुख ही परम सुख है, उन लोगोंके लिये यह भारतवर्ष मरुभूमि है। क्योंकि यहांकी प्रत्येक क्रिया धन, मान और नामवरीमें अन्तर पहुंचानेके लिये—प्रवृत्ति हटानेके लिये सदा तत्पर रहती है। भारतवर्ष धर्मभूमि है, विलासियोंका विलास-कुञ्ज नहीं।

जिनकी आत्माएं उस सुदूर-समागत और इन्द्रियोंके परेकी पवित्र अमृत धाराका पान कर चुकी हैं, सांपके केंचुली त्याग करनेकी भांति जिन मनुष्योंने इस संसारमें कामिनी, काञ्चन और कीर्त्ति—इन समस्त बन्धनोंका परित्याग कर दिया है, जिन्होंने शान्तिके शिखरपर आरूढ़ होकर तुच्छ असार वस्तु—कलह और हिंसा-द्वेषके स्थानमें असीम प्रेम और अपार आनन्दकी स्थापना की है, जिनके अतीत सञ्चित सुकर्मोंने अज्ञानका पर्दा हटा दिया है एवं नाम और शानके गर्वकी निस्सारता उनके नेत्रोंके सामने उपस्थित कर दी है, वे असाधारण शक्तिसम्पन्न मनुष्य ही, इस संसारके तत्त्व-जिज्ञासुओंके गुरु हैं। क्योंकि जननी भारतीका धर्मभण्डार भगवान्को जानने—पहचाननेके लिये सदा खुला रहता है। वहां किसीके लिये प्रवेश-निषेधकी आज्ञा नहीं है। इस माया-मरीचिकामय संसारमें जिनका एकमात्र अस्तित्व

है, उन्हें पहचानना हो तो उसी माताके कृपाभण्डारमें आश्रय लो, इसके सिवाय उन्हें पहचाननेके लिये कोई दूसरा उपाय नहीं है—कोई दूसरी गति नहीं है।

इस मनुष्य-समाजमें सबकी बुद्धि एक दूसरेसे भिन्न है। जो जिस प्रकार समझ सकता है, जिसकी जैसी धारणा जमी हुई है, उसी बुद्धि और धारणाके अनुकूल कोई बात समझायी जाय, तभी वह समझता है। यदि सर्वसाधारणको सामर्थ्यका प्रभाव समझाना हो तो जैसे वे समझ सकते हैं, ठीक वैसे ही उन्हें समझाना उचित है और उसी तरह समझाया जाता है। किन्तु भारतवर्ष अपनी शक्ति—सामर्थ्यका प्रभाव न दिखलाकर भी आज विद्यमान है और अनन्त कालतक रहेगा भी। सदियोंसे भारतवर्ष, दूसरी जातियोंके पांवों तले दबा हुआ है, एक दिन भी इसने प्रतिरोध करनेकी इच्छा नहीं की। परपदाक्रान्त रहकर भारतवर्षने एक दिनके लिये भी बलप्रयोग नहीं किया, राजनीतिसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रक्खा, तथापि यह अस्थि-चर्मावशेष भारतवर्ष आज भी वर्त्तमान है।

कहा जाता है कि जो "योग्य होता है, वही जीवित रहता है।" यदि यह बात सच है तो यह सर्वथा अयोग्य जाति इस समय क्योंकर जीवित है? सब देख रहे हैं कि भारतवर्ष प्राणरहित एक कङ्काल है! कङ्कालसार भारत-सन्तान आज भी ध्वंसप्राय क्यों न हो गयी? सुदृढ़ और बुद्धिशाली अन्य जातियोंकी अपहरण शक्ति द्वारा दिनोंदिन क्षय होनेपर भी अनैतिक हिन्दुओंने अपनी

असीम वृद्धिका परिचय दिया—यह क्यों ? जो अपने कटाक्ष-मात्रसे पृथ्वीको रुधिरधारा-प्लावित कर सकते हैं, निस्सन्देह उन्हींकी प्रशंसा होती है। जो थोड़े लोगोंको भरपेट खिलानेके लिये करोड़ों स्त्री-पुरुषोंको उपवास करनेके लिये बाध्य करते हैं, वे भी प्रशंसाके अधिकारी हैं। परन्तु जो करोड़ों मनुष्योंको दूसरोंके आगेसे भोजनकी थाली बिना खींचे ही शान्ति और सुखमें रखते हैं, उनका कुछ भी यश नहीं—यह क्यों ?

सभी जातियोंके प्राचीन पुराण अगणित वीरोंके इतिहाससे परिपूर्ण हैं। वे सभी वीर विजयी थे। फलतः जबतक भारत-सन्तान अपने पूर्वजोंको विस्मृत नहीं करेगी, जबतक अपने पूर्वजोंकी धमनियोंमें दौड़नेवाले रक्तकी पवित्रता धारण करेगी, तबतक इस पृथ्वीकी कोई भी शक्ति उनका नाश नहीं कर सकेगी।

जो लोग अपने अतीत जीवनकी ओर फिरकर देखते हैं, आजकल सभी उनकी निन्दा करते हैं। कहा जाता है, भारतके केवल अतीतका विचार करनेसे ही यहांकी दशा अत्यन्त शोचनीय है। परन्तु मैं कहता हूं कि यह बिलकुल असत्य और उलटी बात है। जिस दिन भारत-सन्तान अपनी अतीतकी कीर्तिकथाको भूल जायगी उसी दिन उसकी उन्नतिका मार्ग बन्द हो जायगा। पूर्वजोंके अतीत पवित्र कर्म, आनेवाली सन्तानको सुकर्मकी शिक्षा देनेके लिये अत्यन्त सुन्दर उदाहरण हैं। अतीतकी नींवपर ही भविष्यकी स्थापना होती है। जो चला गया वही भविष्यमें

आगे आवेगा। हिन्दुओंके अतीतका इतिहास उनके गौरवकी पराकाष्ठा है। उस अतीत गौरवकी स्मृतिसे उनके भविष्यके भी वैसे ही गौरवमय होनेकी सम्भावना है। अबतक जिन्होंने अतीत-का उज्ज्वल इतिहास उनके समक्ष रक्खा है, वे ही हिन्दू-जातिके सच्चे हितैषी हैं।

प्राचीन कालका आचार-व्यवहार अमुक प्रकारका था इसी कारण भारतवर्षका अधःपतन है—यह कुछ बात नहीं। बल्कि मेरी रायमें तो उन सब आचार-व्यवहारोंकी चरम सीमामें लोग पहुंच नहीं सके, इसीलिये भारतवर्षका यह अधःपतन हुआ है। प्रत्येक समालोचक यह जानता है, कि भारतवर्षके सामाजिक नियमोंमें परिवर्तन होता आया है। परिवर्तनके योग्य जो रीति-नीति हैं, काल और धर्मके वशवर्ती हो वे आप-से-आप परिवर्तित हो जायंगी, इसके लिये कोई प्रयत्न करनेकी आवश्यकता नहीं—यह कहना अनुचित नहीं है। कहनेका तात्पर्य यह है कि भारत-वर्षके—हिन्दूजातिके उन महाप्राज्ञ मनीषियोंद्वारा प्रवर्तित विधि-व्यवस्था सबका मर्म है। उन मनीषियोंके वंशज अपनी धारणामें उन विधि-व्यवस्थाओंको नहीं ला सकते हैं। इसी कारण भारत-वर्षका यह अधःपतन हुआ है।

प्राचीन भारतवर्षके ब्राह्मणों और क्षत्रियोंने अपनी विजय-वासनाको पूर्ण करनेके लिये सैकड़ों वर्ष केवल युद्धक्षेत्रमें ही व्यतीत किये हैं और उस समयके उद्धत राजा युद्धको ही अपना जीवन-व्रत समझते थे। एक ओर तो निरक्षर जनता थी और

दूसरी ओर विजयाभिलाषी राजा लोग। इन दोनों समूहोंको उन समय बांधनेके लिये धर्मबन्धन था। यही कारण है कि धर्मसम्बन्धी आचार-व्यवहार रीति-नीति कठोर हो गयी। उद्धत और निरक्षर लोगोंको धर्मबन्धनसे बांध रखनेके लिये ही उस समय धर्मके विधानको कुछ कठोर (कड़ा) बनानेकी आवश्यकता हुई। इन दोनों प्रकारके झगड़ोंको दूर करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णका आविर्भाव हुआ। क्षात्रतेज और ज्ञानकी महिमाकी रक्षा करनेके लिये ही भगवान् इस धराधामपर अवतीर्ण हुए थे। जो दर्शनशास्त्रका सार है, स्वाधीनताका सार है और धर्मका सार है, उसी सार-तत्वकी शिक्षाका उपदेश भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें अर्जुनको दिया है। इस समय भी सब लोगोंने गीता-शास्त्रके मूल-तत्त्वको हृदयङ्गम नहीं किया है। वह तत्त्व अवश्य ही एक दिन हिन्दुओंके ज्ञानगोचर होगा।

दरिद्रोंके ऊपर प्रभुत्व और अज्ञ लोगोंके शिक्षक होनेके लिये क्षत्रिय और ब्राह्मणोंका आग्रह धीरे धीरे असह्य हो गया था। क्या ब्राह्मण और क्या क्षत्रिय—सबने अपने अधीनस्थोंको अनेक बन्धनोंसे आबद्ध करनेके लिये अनेक प्रयत्न किये थे। अन्तमें क्षत्रियोंके अदम्य तेज और ब्राह्मणोंके असीम ज्ञानका परस्पर सामञ्जस्य करनेके लिये गीता-शास्त्रकी उत्पत्ति हुई थी।

इस बातपर विशेषरूपसे लक्ष्य रखना चाहिये कि प्राचीन भारतवर्षमें सामञ्जस्यका विधान रखनेके लिये जिन दो महापुरुषोंने जन्म-धारण किया था वे दोनों क्षत्रिय थे। श्रीकृष्ण और बुद्धने

भगवान्‌के अवतार-रूपसे लोगोंके द्वारपर जाति और धर्मका कुछ भी विचार न कर ज्ञानका प्रचार किया था।

बौद्ध-धर्ममें असाधारण नैतिकताके रहनेपर भी उसके कुछ प्रयत्न व्यर्थ हुए थे। इसका कारण यह है कि अन्तमें वह धर्म अनेक प्रकारके कुसंस्कारोंसे आच्छन्न हो गया और बहुतसे मन्दिर और देव-देवियोंकी प्रतिमाएं स्थापित हुईं।

एक समय इस भारतवर्षमें दुराचार बहुत बढ़ गया था। उस दुराचारके घृणित और अनुचित काम श्रीशङ्कराचार्य और उनके संन्यासियोंद्वारा ही बन्द हुए थे। जितने दिनोंतक इस शुभ सुयोगका उदय नहीं हुआ था उतने दिनोंतक भारतवर्ष चुपचाप उन दुराचारियोंके अत्याचारोंको सहनेके लिये बाध्य था। शुभ दिन आया, श्रीशङ्कराचार्य आविर्भूत हुए। उनके पश्चात् श्रीरामानुजाचार्य और श्रीमाध्वाचार्यका आविर्भाव हुआ। भारतवर्षसे दुराचारकी कठिन—कठोर और समाज-विद्वेषी क्रियाएं न मालूम कहां लोप हो गयीं? भारतवर्षने फिर उसी ज्ञान और भक्तिके प्रवाहमें अपनी पापराशिको धोकर निर्मलता पायी।

इसके बाद भारतवर्षके प्राचीन इतिहासमें फिर एक नया अभिनय हुआ। प्राचीन भारतके तत्कालीन ब्राह्मण और क्षत्रिय धीरे-धीरे बलहीन हो गये। हिमालय और विन्ध्याचलके मध्यवर्ती आर्योंका निवासस्थान, आर्यावर्त—जहां श्रीकृष्ण और बुद्धने अवतार धारण किया था, वही आर्योंकी वासभूमि धीरे धीरे नीरव हो गयी। आर्यावर्तके ब्राह्मणों और क्षत्रियोंकी ऐसी

अवस्था क्यों हुई ? वेद-विद्याके असीम ज्ञानसे ज्ञानवान ब्राह्मण और वह अदम्य क्षत्रिय-तेज क्यों इस प्रकार शिथिल पड़ गये ? भिन्न भिन्न मत-मतान्तरोंकी वृद्धि ही उस अवनतिका कारण है। किन्तु वह अवनति केवल सामयिक थी।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

मनुके इस वाक्यसे सबको शिक्षा लेनी चाहिये। अवनत ब्राह्मणों और क्षत्रियोंने फिर दक्षिण प्रदेशके बड़े बड़े मनस्वियोंके चरणोंमें बैठकर वेद-विद्याकी शिक्षा ली। वेदान्त-शास्त्रका पुनः अभ्युत्थान हुआ। इस बार वेद-विद्या, जिस दिव्य प्रभाके साथ भारतवर्षमें अवतीर्ण हुई, इससे पहले ऐसी प्रभा किसीने नहीं देखी थी। इस समय अत्यन्त दीन हीन गृहस्थ भी अपनी छोटी-सी कुटीरमें बैठकर वेदके अत्यन्त कठिन 'आरण्यक' भागका बड़ी सरलतासे पाठ करने लगे।

क्षत्रिय ही बौद्ध-धर्मके नेता थे। यही कारण है कि सर्व साधारणने बौद्ध-धर्मका अवलम्बन किया था। संस्कार और धर्मान्तर के प्रभावसे संस्कृतके धर्मशास्त्र, बौद्धधर्मके सामने धीरे धीरे दब गये जिसका फल यह हुआ कि बौद्धोंके बीचसे संस्कृतकी शिक्षा विलुप्त-सी हो गयी। बौद्धोंके संस्कृत भूल जानेके कारण क्रमशः वैदिक धर्म और वेद-विद्यासे भी वे वञ्चित हो गये थे। ऐसी अवस्थामें दक्षिण प्रदेशसे जो संस्कारका स्रोत आया उससे एक मात्र पुरोहितोंका ही उपकार हुआ। परन्तु सर्वसाधारणका बौद्ध

सम्प्रदायसे भी कुछ उपकार नहीं हुआ वल्कि वे और भी अज्ञानकी साँकलमें मजबूत बंध गये।

क्षत्रिय ही सदैव भारवर्षके स्तम्भरूप रहे हैं। क्षत्रिय ही स्वाधीनताका पालन और रक्षण करनेवाले हैं। उन्होंने भारतवर्षके बुरे संस्कारोंको दूर करनेके लिये बार बार प्रयत्न किये थे और उन्हीं लोगोंकी कृपासे पुरोहितोंकी अनुचित कठोरता दूर हुई थी।

जब उन लोगोंमें अधिकांश अज्ञताके अन्धकारमें डूबे हुए थे, उस समय उन लोगोंमें मध्य एशियाकी असभ्य जातियोंके रुधिरका स्पर्श हो गया था। जिस समय उन लोगोंने तलवारकी सहायतासे ब्राह्मणोंकी प्रभुता दबानेके लिये प्रयत्न किया था, उसी समय भारतवर्षका पूर्ण अधःपतन हुआ। उसी अधःपतनसे भारत फिर इस जन्ममें अपना उत्थान नहीं कर सका। क्षत्रिय ही भारतवर्षकी अस्थिमज्जा हैं। भारतवर्षके पतनसे ही क्षत्रियोंका भी पतन हुआ। क्षत्रिय भी अपने पूर्व गौरवको फिर न पा सके। क्षत्रियोंके पतनसे ब्राह्मणोंका पतन हुआ। उसी धारावाहिक पतनसे फिर उत्थान नहीं हुआ। दो सहोदरोंमें एक उन्नत और एक अधःपतित रहे— यह कैसे हो सकता है?

राजाजी, आप जान लें, कि आपके ही पूर्व-पुरुषोंने सत्यका जो सार सत्य है, उसका आविष्कार किया था। वह सत्य यह है कि विश्व एक है, इसलिये जबतक कोई आपको क्षतिग्रस्त नहीं करेगा तबतक वह कदापि विश्वको क्षतिग्रस्त नहीं कर सकता। ब्राह्मणों और क्षत्रियोंने जो अत्याचार किये थे, अपनी अमित

शक्तिको बनाये रखनेके लिये अन्यान्य जातियोंकी जो हानियां की थीं, चक्रवृद्धि व्याजके साथ उन्हें उसका फल भुगतना पड़ा है; उन्हींकी हानि अधिक हुई है। उस स्वकृत कर्मके फलसे आज भी वे अधःपतित अवस्थामें हैं और न मालूम कितने वर्षोंतक वे पराधीनताकी बेड़ी पहने रहेंगे।

आपहीके एक पूर्वपुरुषने—जो ईश्वरके अवतार माने गये हैं, कहा था—"जिसका अन्तःकरण एकतामें सम्बद्ध है वह मनुष्य इसी जन्ममें स्वर्ग पानेका अधिकारी है।" हम लोग भी इस बातपर विश्वास रखते हैं। तब क्या उनकी उक्ति मिथ्या है? अर्थशून्य प्रलाप है? जब यह बात नहीं है तब सर्वत्र समदर्शी होकर इसी जीवनमें यदि स्वर्ग-लाभ हो जाय तो भगवान्से साक्षात्कार हो सकता है। अस्तु, एकताके प्रति जबतक एकत्व (Sameness)—में तन्मय नहीं हो सकता, तबतक उसके लिये यह संसार अन्धकारपूर्ण है। अतएव सदाशय राजाओंको उचित है कि इसी पथका अनुसरण करें। वेदान्त जिस पथका पथिक है, उसी पथके वे भी पथिक बनें। मैं भाष्यकारोंकी बातें नहीं कहता। भिन्न भिन्न मतावलम्बी भाष्यकारोंमेंसे दो या एक किसी विशेष भाष्यकारका अनुकरण करनेके लिये नहीं कहता। महाराज, जो आपके हृदयमें विराज रहा है, परमात्मा रूपसे जो इस राज—शरीरमें निवास करता है, वह जैसा समझता है मैं भी उसी प्रकारसे वेदान्तशास्त्र समझनेके लिये कहता हूं। सर्वोपरि सर्वत्र समदर्शन—इसी महोपदेशका अनुसरण करनेको कहता हूं। सर्वत्र समदर्शन, सभी

जीवोंमें समभाव, सर्वत्र—सभी जीवोंमें, ईश्वर-दर्शन करनेके लिये महाराज, मैं आपसे अनुरोध करता हूं।

भगवान्ने कहा है:—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

—गीता अ० ४ श्लो० २९

अपनेको सर्वभूतस्थ जानकर और अपनेमें सर्वभूतोंको मानकर योगयुक्तात्मा पुरुष सर्वत्र समदर्शनकी इच्छा करते हैं। यही मुक्तिका—स्वाधीनताका मार्ग है। विषमता ही बन्धनका कारण है। शारीरिक एकताके विना आजतक इस संसारमें कोई भी मनुष्य, कोई भी जाति शारीरिक स्वाधीनता नहीं पा सकी। अथवा मानसिक एकताके विना आजतक कोई भी मानसिक स्वाधीनता पानेमें समर्थ नहीं हुआ।

मूढ़ता, असमदर्शन और वासना—यही तीनों बातें मनुष्योंके दुःखोंकी कारणीभूत हैं। इन तीनोंमें एक दूसरेके अनुकरणकी प्रवृत्ति है। मनुष्य अपनेको किसी मनुष्यसे बड़ा क्यों समझेगा? मनुष्य पशुसे श्रेष्ठ है, यह विचार भी उसके मनमें क्यों स्थान पावेगा? इस संसारमें सर्वत्र ही उसी सर्वव्यापीका निवास है। सर्वत्र यही तो है कि—

'त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।'
म स्त्री, तुम पुरुष, तुम कुमार और तुम्हीं कुमारी हो।

बहुतोंका यह कहना है कि "यह सब संन्यासियोंको ही शोभा

देता है, गृहस्थोंके लिये यह सब नहीं है।" यह सच है, किन्तु क्या गृहस्थोंके लिये कोई कर्त्तव्य नहीं है? गृहस्थोंके सैकड़ों कर्त्तव्य हैं, क्या वे उनका पालन करनेके लिये वाध्य नहीं हैं? समदृष्टि गृहस्थोंके लिये भी आवश्यक है। समदृष्टि रखना गृहस्थका कर्त्तव्य है और इसीसे गृहस्थके यथार्थ गार्हस्थ्य धर्मका पालन होता है। सैकड़ों लोगोंके साथ गृहस्थोंको व्यवहार रखना पड़ता है, सैकड़ों आत्मीय स्वजन और परिजनोंसे वे घिरे रहते हैं। इसलिये उन सबके प्रति समदृष्टि रखना ही गार्हस्थ्य धर्मका यथार्थ उद्यापन है। गृहस्थ सबको समान भावसे देखेंगे तभी वे वास्तविक गृहस्थ हो सकेंगे। प्रत्येक समाज, मनुष्य, जाति और जीवको इस समदर्शनकी शिक्षा देनी चाहिये—यही सबका लक्ष्य होना चाहिये। परन्तु शोक है कि लोग समदर्शनके मार्गमें कठिन वैषम्य ही देख रहे हैं। अच्छेके नामपर बुरेकी सेवा कर रहे हैं। यही मनुष्यके सर्वनाशका मूल है। इसी विषमतासे मनुष्य-समाजमें विषमताकी धारा प्रवाहित हो रही है। यह असमदर्शन, यही अनैक्य भाव शारीरिक, मानसिक और पारमार्थिक बन्धनका एक मात्र कारण है।

गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानम् ततो याति परां गतिम्॥

—गीता १३।२८

सर्वत्र परमात्मारूपी ईश्वर अधिष्ठान करता है, यह जानकर जो दूसरोंसे हिंसा नहीं करता वही परमगति (मोक्ष) पाता है।

आपलोग राजपूत हैं, आपलोग ही प्राचीन भारतके गौरव हैं। आपलोगोंके अधःपतनसे जातीय अधःपतन हुआ है और आप जब उन्नत होंगे, तभी भारतकी भी उन्नति होगी। क्षत्रियोंके वंशज फिर ब्राह्मण-सन्तानोंके साथ एकत्र होकर अज्ञानियोंकी ज्ञानवृद्धि और दीनोंकी सहायता करते हुए सर्वत्र समदर्शनका परिचय दें। तभी भारतके गत गौरवकी प्राप्ति और पितृपुरुषोंकी अतुल कीर्तिकी रक्षा होगी।

वह सुसमय नहीं आया है, उस शुभ मुहूर्तका सुन्दर संयोग अभी नहीं हुआ है—यह बात कौन कह सकता है? एक समय एक ध्वनि उठी थी, उस ध्वनिका कम्पन घूम-घूमकर प्रतिदिन बल-सञ्चय कर रहा है। एक दिन सरस्वती नदीके तटपर खड़े होकर एक ब्राह्मणने जिस ध्वनिका उच्चारण किया था, वह ध्वनि पर्वतराज हिमालयके प्रत्येक शिखरपर प्रतिध्वनित हुई थी और उसी ध्वनिकी गूंज श्रीकृष्ण, बुद्ध और श्रीचैतन्यके अन्तःकरणसे उठी थी। फिर वही ध्वनि भारतवासियोंके श्रुतिपथका स्पर्श करेगी। फिर भारत-भण्डारका द्वार उन्मुक्त होगा। फिर वही उज्ज्वल आलोक—दिव्य प्रकाश - जिस प्रकाशसे यह ब्रह्माण्ड प्रकाशित है, आंखोंके सामने आवेगा, फिर द्वार खुलेगा। और आप, मेरे प्रीतिपात्र राजा हैं। जो जाति सनातनधर्मके लिये स्तम्भ-रूप है, आप उसी जातिके शीर्षस्थानीय हैं। आप उन्हीं

राम और कृष्णके वंशज हैं। क्या आप चुपचाप बैठे रहेंगे ? यह निश्चय है कि धर्मकी रक्षाके लिये आप ही सबसे पहले आगे आवेंगे।

रामकृष्णका आशीर्वाद आपके ऊपर अनन्त धारासे बरसे। उनके आशीर्वादसे दीर्घ जीवन लाभकर आप सनातन सत्यकी सेवामें निरन्तर रत रहें—यही विवेकानन्दकी आन्तरिक प्रार्थना है।

* * * *

अमेरिकासे राजाजीके पास स्वामीजीके पत्र बराबर आते जाते रहते थे। उन पत्रोंमेंसे तीन पत्रोंका सारांश यहां दिया जाता है। इनको पढ़कर पाठक यह अनुमान सहजमें कर सकेंगे कि स्वामी विवेकानन्दजीके हृदयमें राजाजीके प्रति प्रेम और आदरका कितना भाव था और वे उन्हें किस दृष्टिसे देखते थे।

(१)

चिकागो

२३ जून १८९४

श्रीमन्,

श्रीनारायण आपका तथा आपके सम्बन्धियोंका कल्याण करे। श्रीमान्‌की कृपापूर्ण सहायतासे मैं इस देशमें आ सका। जबसे मैं यहां आया हूं सभी मुझे अच्छी तरहसे जान गये हैं तथा यहांके अतिथि-सत्कार-परायण निवासियोंने मेरी आवश्यकताके सभी सामान एकत्र कर दिये हैं। यह एक विचित्र देश है तथा यहांकी जाति बहुत अंशोंमें एक अपूर्व जाति है। इस देशके लोग अपने

दैनिक कार्यों में कल-पुर्जों का जितना व्यवहार करते हैं, दूसरी किसी जातिके मनुष्य उतना व्यवहार नहीं करते। यहां जहां देखिये मशीनसे ही काम लिया जाता है। यहांकी मनुष्य-संख्या सारे संसारकी मनुष्य-संख्याका केवल बीसवां हिस्सा है, परन्तु फिर भी संसार भरके धनका छठा भाग यहांके लोगोंके हाथमें है। इनके धन और विलासिताकी सीमा नहीं है। यहांकी सभी वस्तुएं बड़ी मंहगी हैं। यहांके मजदूरोंकी मजदूरी संसार भरके मजदूरोंसे अधिक है। इतना होनेपर भी मजदूरों और मालिकोंमें सदा झगड़ा ही रहता है। संसारके और किसी भी भागमें स्त्रियोंको उनके स्वत्व प्राप्त नहीं हैं, जितने कि अमेरिकाकी स्त्रियोंको हैं। धीरे-धीरे वे सभी कुछ अपने हाथोंमें लेती जाती हैं और आश्चर्यकी बात तो यह है कि यहांके पढ़े-लिखे मनुष्योंकी संख्या पढ़ी-लिखी स्त्रियोंसे कम है। हाँ, इतना जरूर है कि जितने बड़े बड़े प्रतिमा-शाली लोग हैं पुरुष-वर्गमें ही हैं। यद्यपि पाश्चात्य लोग हमारे जाति-बन्धनोंकी बड़ी-कड़ी आलोचना करते हैं तथापि उनके यहां सबसे गयी बीती एक संस्था है जिसका आधार धन है। अमेरिकन कहा करते हैं कि द्रव्य ही यहां सब कुछ कर सकता है। संसारके और किसी भी देशमें न तो इतने नियम हैं और न कहीं उन नियमोंकी इतनी उपेक्षा ही की जाती है। वास्तवमें बेचारे हिन्दू इन पाश्चात्योंसे कहीं अधिक धर्मपरायण हैं।

धम-प्रचारके बहाने पाश्चात्य देशवाले कपट और उन्मत्तताका प्रचार करते हैं। गंभीर विचारवाले पुरुष इनके अन्ध-भक्तिपूर्ण

धर्मसे विरक्त हो गये हैं और भारतकी ओर किसी नये प्रकाशके लिये देख रहे हैं। श्रीमान् स्वयं देखे विना इस बातका अनुभव नहीं कर सकेंगे कि ये पुरुष वेदके महान् विचारोंके छोटे-छोटे अंशोंको भी—जो आधुनिक विज्ञानके आघातोंका सामना करते हैं और विज्ञान जिनको कुछ क्षति नहीं पहुंचा सकता, किस उत्साहके साथ ग्रहण करते हैं। शून्यसे संसारकी उत्पत्ति, आत्माकी सृष्टि और स्वर्ग नामक स्थानमें सिंहासनपर एक स्वेच्छाचारी ईश्वरका आसीन होना, अनन्त नरकाग्नि आदि सिद्धान्तोंसे यहांके शिक्षित लोग ऊब गये हैं। सृष्टि, आत्माकी अनन्तता, मनुष्यकी आत्मामें ही ईश्वरका वर्तमान होना आदि वेदके उच्च विचारोंको वे एक या दूसरे रूपमें बड़ी शीघ्रतासे ग्रहण कर रहे हैं। पचास वर्षके भीतर ही संसारभरके शिक्षित लोग आत्मा, सृष्टिका अमरत्व तथा पूर्ण प्रकृति ईश्वरका रूप है—इत्यादि वेदोंके पवित्र उपदेशोंमें विश्वास करने लगेंगे। अब भी उनके पुरोहित (पादरी) बाईबलकी अपने मतानुसार व्याख्या कर रहे हैं। उपसंहारमें मुझे यही कहना है कि उन्हें अभी अधिक आध्यात्मिक सभ्यताकी और हमें अधिक भौतिक सभ्यताकी आवश्यकता है।

भारतके दरिद्रोंकी दुर्दशा ही यहांकी सभी बुराइयोंकी जड़ है। पश्चिमके दरिद्र लोग नरकके दूत हैं और इनके साथ यदि भारतके दरिद्रोंकी तुलना की जाय तो वे स्वर्गके फरिश्तोंके समान दिखायी पड़ेंगे। इसीसे भारतके दरिद्रोंका उद्धार करना इतना सहज है। यदि हमारे देशकी नीच जातियोंका कुछ भी उपकार करना हो तो

एक आवश्यकता है—वह यह कि उन्हें शिक्षित किया जाय। उनके नष्टप्राय व्यक्तित्वको पुनरपि विकास कर देनेकी आवश्यकता है। यह बहुत बड़ा काम हमारे देशके निवासियों और राजा-महाराजाओंपर निर्भर करता है। अभीतक तो उस ओर कुछ भी काम नहीं हुआ है। प्रबलोंकी शक्तिकी प्रचण्डता और विदेशियों द्वारा विजित होनेके कारण वे सदियोंसे कुचले जा रहे हैं और अन्ततः भारतके दरिद्र यह भूल गये हैं कि वे भी मनुष्य हैं। उन्हें उन्नत विचारोंकी आवश्यकता है। चारों ओर संसारमें क्या हो रहा है, यह दिखानेके लिये उनकी आंखें खोलनेकी आवश्यकता है। इसके उपरान्त अपनी मुक्तिका उपाय वे स्वयं सोच लेंगे। प्रत्येक जाति, प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्रीको अपनी मुक्तिका मार्ग स्वयं ही खोज लेना चाहिये। उन्हें उच्च विचार प्रदान कीजिये, बस केवल इतनी ही सहायताकी उन्हें आवश्यकता है। आगे सबकुछ स्वयं ही आजायगा। हमलोग केवल रासायनिक पदार्थोंको एकत्र कर देते हैं, प्रकृतिके नियमके अनुसार स्फटिक तो स्वयंही तैयार हो जाते हैं। उन्हें विचार-दान करना हमारा कर्त्तव्य है और सब कुछ तो वे स्वयं ही कर लेंगे।

भारतमें केवल इसीकी आवश्यकता है। बहुत दिन हुए मेरे मस्तिष्कमें यह विचार उत्पन्न हुआ। मैं भारतमें इसे कार्यरूपमें परिणित नहीं कर सका, और मेरे भारतसे यहां आनेका यही कारण है। दरिद्रोंकी शिक्षाका प्रबन्ध करनेमें सबसे प्रधान कठिनाई यह है—मान लें कि श्रीमान्‌ने प्रत्येक ग्राममें एक-एक निःशुल्क

पाठशाला खोल दी परन्तु उनसे कुछ उपकार न होगा क्योंकि भारतवर्षमें इतनी दरिद्रता है कि वहांके दरिद्र बालक पाठशालाओंमें न जाकर अपने पिताके साथ खेतोंमें काम करेंगे अथवा अपने जीवन-निर्वाहका और कोई उपाय करेंगे। तब "यदि पर्वत महम्मदके निकट नहीं जा सकता तो महम्मदको ही पर्वतके निकट जाना पड़ेगा।"

दरिद्र बालक यदि शिक्षाके समीप नहीं आसकते तो शिक्षाको बालकोंके पास जाना चाहिये। हमारे देशमें सहस्रों स्वतन्त्र विचारवाले बड़े त्यागी संन्यासी रहते हैं जो गांव गांव जाकर धार्मिक शिक्षा दे सकते हैं। यदि इनमेंसे कुछ लोग सांसारिक शिक्षा देनेके लिये संघटित कये जांय तो वे स्थान-स्थान और द्वार-द्वारपर जाकर धर्म-प्रचार करनेके साथ साथ शिक्षा भी दे सकेंगे। मान लीजिये कि इनमेंसे दो संन्यासी संध्या समय केमेरा, ग्लोब, मानचित्र इत्यादि लेकर किसी गांवमें चले जांय तो वे वहांके अशिक्षितोंको गणित, ज्योतिष और भूगोल इत्यादिकी बहुत सी बातें बतला सकते हैं। भिन्न-भिन्न जातियोंकी कथा कहकर वे उन बेचारोंको कानों द्वारा ही इतनी शिक्षा दे सकते हैं, जितनी कि वे आजन्म पुस्तकें पढ़कर नहीं प्राप्त कर सकते। इसके लिये संघटनकी आवश्यकता है और इसके लिये द्रव्यकी आवश्यकता है। इस मार्गका अवलम्बन कर कार्य करनेके लिये भारतवर्षमें बहुत मनुष्य हैं, परन्तु दुःख इस बातका है कि उनके पास धन नहीं है। किसी पहियेको चलानेमें बड़ी कठिनता होती है, परन्तु एक बार

चला देनेसे ही वह अधिकाधिक तीव्र गतिसे घूमने लगता है। अपने देशमें इसके लिये मैंने सहायताकी याचना की थी, परन्तु जब वहांके धनवानोंकी ओरसे कोई सहानुभूति प्राप्त न हुई तो मैं श्रीमान्‌की सहायतासे इस देशमें चला आया। अमेरिकन इस बातकी कुछ भी परवाह नहीं करते कि भारतके धनहीन लोग मरेंगे वा जियेंगे। जब हमारे देशहीके आदमी अपने स्वार्थके साधनकी चिन्ताको छोड़कर दूसरे किसीकी परवाह नहीं करते तो ये लोग क्यों करने लगे?

उदार राजन्, यह जीवन बहुत अल्प समयका है तथा संसारके आडम्बर क्षणस्थायी हैं, यहां वास्तवमें उन्हींका जीवन है जो दूसरोंके लिये जीते हैं, शेष तो जीवित रहनेपर भी मृतकके समान हैं।

श्रीमन्, आपके समान उन्नतविचारवाले एक ही राजवंशी भारतको अपने पांवोंके बल फिर खड़ा करनेके लिये बहुत कुछ सहायता कर सकते हैं और ऐसा नाम छोड़ जा सकते हैं जिसकी पूजा भविष्यकी सन्तान करेगी। मेरी ईश्वरसे यही प्रार्थना है कि वह आपके उदार हृदयको अज्ञानान्धकारमें पड़े हुए करोड़ों दुःखी दरिद्री भारतीयोंकी वेदनाका अनुभव करावे।

आपका—
विवेकानन्द

(२)

१८९४

....

...एक संस्कृतके कविने कहा है "न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृह-मुच्यते" अर्थात् केवल घर घर नहीं हैं गृहिणीका ही नाम घर है। जो घर आपको ताप,शीत और वर्षामें आश्रय देता है उसकी परख उन स्तम्भोंसे नहीं हो सकती जिनपर वह अवलम्बित है, चाहे वे स्तम्भ बहुत ही सुन्दर और मूल्यवान क्यों न हों। उसकी परख गृहिणीसे हो सकती है जो उस घरकी प्रधान स्तम्भ और आधार है। इस आदर्शके अनुसार अमेरिका निवासियोंका परिवार तुलनामें संसारकी किसी जातिके परिवारसे निम्न-श्रेणीका सिद्ध नहीं हो सकता। मैंने अमेरिका निवासियोंके परिवारोंकी बहुत सी कथाएं सुनी हैं जिनमें स्वतन्त्रता स्वेच्छाचारिताके रूपमें परिणत हुई दिखायी पड़ती है। उनमें स्त्रियोचित गुण-विहीना स्त्रियां, स्वातन्त्र्य नृत्य तथा उस प्रकारकी दूसरी बेकार हरकतोंके द्वारा परिवारकी शांति और सुखको पैरोंसे कुचलती हुई पायी जाती हैं। परन्तु अब अमेरिकाके परिवार तथा अमेरिकाकी स्त्रियोंके विश्यमें एक वर्ष तक अनुभव प्राप्त करनेके बाद मुझे उनके विषयकी ये बातें एकदम मिथ्या और भ्रम मूलक प्रतीत होती हैं। अमेरिकाकी महिलाओ, तुम्हारी कृतज्ञताके ऋणसे उद्धार पानेके लिये यदि मैं सैंकड़ों पक्तियां लिख डालूं तो भी वे यथेष्ट न होंगी। तुम्हारी कृतज्ञता प्रकाश करनेके लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं।

प्राच्य देशोंमें यह अतिशयोक्ति प्रचलित है—

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखिनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं—

यदि समुद्ररूपी दावातमें नीलगिरिके समान स्याही हो;कल्पतरुकी शाखाकी कलम हो, पृथ्वी लिखनेका कागज हो, लिखनेवाली स्वयं शारदा हो और वह बराबर लिखती रहे तो भी आपके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित नहीं हो सकती । प्राच्यकी इसी अतिशयोक्तिसे प्राच्यदेश-वासियोंकी कृतज्ञता प्रगट होती है। एक सुदूरदेशसे धर्म-प्रचारकके रूपमें गत वर्ष मैं यहां आया। न मुझे कोई जानता था और न मेरे पास धन ही था और न विद्या ही थी जिससे मुझे कोई अपनाता। मेरा कोई न तो मित्र था और न कोई सहायक ही। मैं प्रायः असहायावस्थामें था और ऐसी अवस्थामें अमेरिकाकी महिलाओंने मेरी सहायता की, मुझे आश्रय और भोजन दिया। वे मुझे अपने घर ले गयीं और अपने पुत्र तथा भाईके समान मेरे साथ वर्ताव किया। उन्होंने उस समय भी मेरा साथ नहीं छोड़ा, जब उनके अपने पुरोहित मेरे समान भयावह अधार्मिक Heathen को छोड़ देनेके लिये उत्तेजित कर रहे थे, उनके श्रेष्ठतम मित्र उन्हें यह कहा करते थे कि "इस अनजान विदेशीको त्याग दो, संभव है इसका चरित्र भयंकर हो" । परन्तु वे किसीके चरित्र और आत्माका निर्णय दूसरेकी अपेक्षा स्वयं अच्छी तरह कर सकती हैं—क्योंकि साफ आइनेमें ही किसी वस्तुका प्रतिबिम्ब

आता है। मैंने कितने सुन्दर परिवार देखे हैं, कितनी ऐसी माता देखी हैं कि जिनके चरित्रकी पवित्रता और जिनका अपनी सन्तानके प्रति निःस्वार्थ प्रेम व्यक्त नहीं किया जा सकता। कितनी कन्याएं, कितनी पवित्र कुमारियां देखीं जो "डायना (Diana) के मन्दिरकी तुषार-राशिके समान पवित्र हैं"।

इतना होनेपर भी उनमें बड़ी विद्वत्ता, शिक्षा और आध्यात्मिकता है।

तो क्या अमेरिकामें ऐसी रमणियां हैं जो पङ्करहित स्वर्गीया अप्सराएं हैं। भला और बुरा सभी जगह पाया जाता है यह सच है, परन्तु किसी जातिके चरित्रका पता उसके निर्बल और पुष्ट व्यक्तियोंसे नहीं लगता, क्योंकि ये तो घासकी भांति पीछे ही पड़े रह जाते हैं, उसका पता ऐसे भले उदार और पवित्र व्यक्तियोंसे चलता है जिनसे यह प्रगट हो कि जातिके जीवनका स्रोत कैसी स्वच्छता और दृढ़ताके साथ प्रवाहित होता है।

क्या आप अनन्नासके वृक्ष और उसके फलके स्वादकी जांच उन कच्चे और छोटे कीड़ोंसे खाये हुए फलोंसे कर सकते हैं, जो भूमिपर पड़े रहते हैं—चाहे उनकी संख्या कभी कभी बहुत अधिक क्यों न हो ? यदि एक ही पका और नया फल मिल जाय तो उसीसे जो अनन्नासके वृक्षकी शक्ति, संभावना और उद्देश्यका पता लग सकता है वह पता ऐसे सैकड़ों फलोंसे भी नहीं लग सकता जिनका विकास नहीं होता है।

पुनः मैं अमेरिकाकी आजकलकी महिलाओंके उच्च और

उदार हृदयकी प्रशंसा करता हूं। मैंने इस देशमें बहुतसे उदार और विशाल-हृदय पुरुष भी देखे हैं जिनमें कोई कोई तो यहांके छोटे छोटे गिरजाघरोंमें रहते हैं, परन्तु यहांपर (स्त्रियों और पुरुषोंमें) एक अन्तर है। यहांके पुरुषोंके लिये उदार होना भयावह है, क्योंकि वे धर्म तथा अध्यात्मको तिलाञ्जलि देकर उदार बनते हैं, किन्तु यहांकी स्त्रियां सभी अच्छी वस्तुओंके साथ सहानुभूति रखती हुई तथा अपने धर्मका बिना त्याग किये उदार बनती हैं। वे स्वभावतः ही जानती हैं कि यह (उदारता) प्रत्यक्षवादका प्रश्न है—अप्रत्यक्षवादका नहीं। इसमें संयोगकी (जोड़की) आवश्यकता है न कि वियोग (बिलगाव) की। प्रतिदिन वे इस बातसे अभिज्ञ होती जाती हैं कि प्रत्येक वस्तुके अस्तित्व और निश्चयात्मक पक्ष ही संघटित रहेंगे तथा अस्ति और निश्चयात्मक विचारोंके संग्रह-कार्य वा यह कहिये कि प्रकृतिकी आत्म—निर्माणकी शक्ति ही संसारके नास्ति और संहारकर्त्ता तत्त्वोंका विनाश करती है। चिकागोका वर्ल्ड्स फेयर Worlds fair (संसारभरका मेला) कितना आश्चर्य-जनक कार्य्य सम्पन्न हुआ है। वह धार्म्मिक महा-सम्मेलन Parliament of Religions भी कितना मनोहर हुआ है। वहां संसारके कोने कोनेसे आयी हुई ध्वनि भिन्न भिन्न धार्मिक विचारोंको व्यक्त कर रही थी। मुझे भी डाक्टर बैरोज Dr. Ba--rrows तथा मि० बौने (Mr. Bonny) की कृपासे अपने विचार प्रकट करनेकी अनुमति मिली थी। मि० बौने कितने विचित्र मनुष्य हैं। यह महान् कार्य जो पूर्ण सफलताके साथ सम्पन्न

हुआ, उन्हींके मस्तिष्कसे निकला था तथा उन्होंने इसे सम्पादित किया। वे स्वयं पादरी नहीं हैं, पर गिरजोंके उच्च पदाधिकारियोंके सभापति हैं।

धीर, और गम्भीर विद्वान् मि० बौनेके उज्ज्वल नेत्रोंसे उनकी अन्तरात्माका परिचय मिलता है।

भवदीय—

विवेकानन्द

(३)

संयुक्तराज्य, अमेरिका

९ जुलाई १८९५

....

......मेरे भारतवर्षमें आनेके संबन्धमें बात इस प्रकार है। श्रीमान् जानते हैं कि मैं बड़ा अध्यवसायी हूं।

मैंने इस देशमें एक बीज बोया है जो एक छोटे पौधेके रूपमें प्रकट हो आया है और मुझे आशा है कि यह शीघ्र ही एक वृक्षका आकार धारण करेगा। यहां कई सौ लोग मेरे शिष्य हो गये हैं। मैं यहां कई संन्यासी बनाऊंगा और उनके ऊपर कामका भार छोड़कर भारतको लौटूंगा। ईसाई पुरोहित (पादरी) ज्यों ज्यों मेरा विरोध करते हैं, त्यों त्यों मैं इस बातके लिये दृढ़-संकल्प होता जाता हूँ कि इनके देशमें कोई स्थायी चिन्ह छोड़ जाऊं। लन्दनमें मेरे कई मित्र पहलेसे ही विद्यमान हैं। मैं अगस्तके अन्त तक वहां

जाऊंगा। इस वर्ष शरत्कालका कुछ अंश तो लन्दनमें और कुछ न्यूयार्कमें विताऊंगा और तब भारतवर्षको आऊंगा। यदि ईश्वरकी कृपा हुई तो शरत्ऋतुके बाद काम करनेके लिये बहुतसे लोग मिल जायंगे। मेरे प्रत्येक कार्यका क्रम होगा—पहले हंसी, अनन्तर विरोध और अन्तमें स्वीकृति।

जो मनुष्य अपने समयसे बहुत आगेकी बातें सोचता है उसे समझनेमें लोगोंसे भूल हो जाती है। अस्तु; विरोध और उत्पीड़नका मैं स्वागत करता हूँ। मुझे केवल दृढ़ और पवित्र होना चाहिये। ईश्वरमें पूर्ण विश्वास होना चाहिये और तब ये सब रुकावटें दूर हो जायंगी।

विवेकानन्द

* * * *

स्वामी विवेकानन्दजीने राजाजीको अमेरिकासे एक फोनोग्राफ भेजा था। उसके एक रेकार्डमें राजाजीके नाम स्वामीजीका सन्देशा था। सन्देशा हिन्दी भाषामें था। उसे एक छोटासा व्याख्यान ही समझना चाहिये। सन्देशेका सारांश यह था कि अपनी प्रजाओंमें विद्या-प्रचार कीजिये, गांव-गांवमें पाठशाला खोलिये, रोगियोंकी चिकित्साके लिये औषधालयकी व्यवस्था कीजिये। प्रजाकी उन्नति ही आपकी उन्नति है। इसलिये प्रजाजनोंका अपनी सन्तानकी भांति पालन कीजिये। इस सन्देशेका रेकार्ड जब बजाया जाता था, तब यह जान पड़ता था, मानों स्वामीजी यहीं बोल रहे हैं।

पांचवां अध्याय

[खेतड़ीमें स्वामी विवेकानन्दजीके गुरुभाई स्वामी अखण्डानन्दजीका शुभागमन और राजाजीके आतिथ्यमें निवास, शेखावाटीके गरीबोंकी कष्टकथा, स्वामी विवेकानन्दजीसे शेखावाटीमें कार्य करनेकी अनुमति-प्रार्थना, राजाजी-का उत्साह-प्रदान और स्वामी विवेकानन्दजीका सहानुभूति-सूचक पत्र, रामकृष्णमिशनका सूत्रपात, खेतड़ीमें शिक्षा-प्रचारके लिये स्वामी अखण्डानन्दजीका प्रशंसनीय उद्योग, दरोगा जातिके बालकोंको पढ़ानेका विशेष प्रयत्न, स्वामी अखण्डानन्दजीके उपदेशका खेतड़ीनरेशपर प्रभाव, खेतड़ी-नरेशने प्रातःकाल देरतक सोनेकी आदत एक दिनमें छोड़ दी, खादके लिये हड्डियोंकी रक्षाकी आज्ञा, स्वामी अखण्डानन्दजीकी जबानी—राजा अजीत सिंहजीकी न्यायपरायणता एवं सहृदयताका वर्णन ।]

स्वामी विवेकानन्दजी अमेरिकामें थे उसी अवधिमें उनके गुरु-भाई स्वामी अखण्डनन्दाजीका खेतड़ीमें शुभागमन हुआ । इससे पहले भी वे खेतड़ी पधार चुके थे । राजाजीने उनके आतिथ्यका यथोचित प्रबन्ध कर दिया । स्वामी अखण्डानन्दजीने शेखावाटीकी स्थितिका ज्ञान प्राप्त कर लिया । राजाजीके विनम्र व्यवहार और शिष्टाचारसे स्वामीजी मुग्ध हो गये । स्वामीजीका कहना है कि "प्रायः डेढ़ महीने तक मैं मेहमानकी तरहँ रहा । खेतड़ी लाइब्रेरीसे पुस्तकें मंगाकर—विशेषकर "थियोडोरपारकर" की ग्रन्थावली पढ़ता रहा ।" अनन्तर स्वामीजी मलसीसरके ठाकुर साहिब श्री भूरसिंहजी और उनके कनिष्ठ भाई ठा० सा० चतुरसिंहजीके आमंत्रणसे प्रायः



स्वामी अखण्डानन्द

छे महीने मलसीसरमें रहे। मलसीसरसे पुनः खेतड़ी आ गये। शेखावाटीके जनसाधारणसे मिलनेपर उन्हें उनके सुख-दुःखका हाल मालूम हुआ। वहांके गरीबोंके कष्टसे स्वामीजीका हृदय एक विशेष प्रकारके कष्टका अनुभव कर रहा था। उन्होंने अपने हृदयकी व्यथा स्वामी विवेकानन्दजीको लिखी और शेखावाटीमें कार्य करनेकी आवश्यकता दिखलाते हुए उनकी अनुमति चाही। स्वामी अखण्डानन्दजीका उत्साह देखकर राजाजीने भी उनके उद्देश्यके प्रति सहानुभूति प्रकट की और कहा कि आप कार्य कीजिये, जिस प्रकारकी सहायताकी अपेक्षा होगी वह आपको राज्यसे ही दी जायगी। उधर अमेरिकासे स्वामी विवेकानन्द-जीका* पत्र पहुंच गया जिसमें उन्हें राजपूतानेमें काम करनेके लिये उत्साहित किया गया था।

---

* स्वामी अखण्डानन्दजीको स्वामी विवेकानन्दजीका खेतड़ीमें जो उत्साहवर्द्धक पत्र मिला था, उसका कुछ अंश इस प्रकार है:—

......राजपूतानेके भिन्न भिन्न स्थानोंके ठाकुरोंमें आध्यात्मिक भाव और लोक-हितैषिताको प्रचारित करनेकी चेष्टा कीजिये। हमें कार्य करना उचित है और आलसी बनकर बैठे रहनेसे यह हो नहीं सकता। कभी कभी मलसीसर, अलसीसर तथा अन्यान्य "सरों" की यात्रा किया कीजिये।

खेतड़ीके निर्धन और नीची जातिके लोगोंके घर जाकर उन्हें धार्मिक शिक्षा दीजिये। उन्हें भूगोल तथा अन्य तरहके विषयोंके मौखिक पाठ दिया कीजिये। आलसी बनकर बैठे रहने, राजसी भोजन करने तथा

अपने मनके उत्साह, स्वामी विवेकानन्दजीके आदेश और राजाजीकी सहायतासे स्वामी अखण्डानन्दजी जनहितमें लग गये। इसी समय प्रसिद्ध लोक-सेवा-परायण संस्था रामकृष्ण मिशनके कार्यकी नींव खेतड़ीमें डाली गयी। उसके उद्देश्यके अनुसार कार्य प्रारम्भ किया गया। अन्यान्य कार्योंके अतिरिक्त शिक्षा-प्रचार-का काम भी स्वा० अखण्डानन्दजीने हाथमें लिया। राजाजीकी उदारतासे खेतड़ी हाईस्कूलकी स्थापना हो चुकी थी। उसमें अच्छे अच्छे अध्यापक नियुक्त थे। परन्तु विद्यार्थियोंकी संख्या अधिक न थी। इसका कारण यह था कि लोगोंने उस समय तक विद्याध्ययनका महत्व विशेष नहीं समझा था। स्वा० अखण्डानन्दजी घर घरमें जाकर लोगोंको विद्याके लाभ समझाने लगे। उन्हें मालूम हुआ कि खेतड़ीमें दरोगा जातिके सैकड़ों घर

केवल "हे प्रभो रामकृष्ण !" कहनेसे कोई लाभ नहीं। समय समय पर दूसरे गांवोंमें भी जाया कीजिये और लोगोंको जीवन तथा धर्मके तत्त्वों-की शिक्षा दीजिये। कर्म, पूजा और ज्ञान—यही सब शिक्षाके प्रधान विषय हैं। इनका सम्पादन करनेसे मन पवित्र हो जायगा। अन्यथा अग्निके बदले भस्मके ढेरमें आहुति देनेके समान सब कुछ निष्फल होगा। गेरुआ वस्त्र विलासिताके लिये नहीं है। यह श्रेष्ठ कर्मोंकी ध्वजा है। लोकहितके लिये आपको तन मन और वचनसे प्रस्तुत रहना चाहिये। आपने पढ़ा होगा मातृ देवो भव, पितृ देवो भव—किन्तु मैं कहता हूं दरिद्र देवो भव, मूर्ख देवो भव। यह जान लेना कि इनकी सेवा करना परम धर्म है।......

हैं और पढ़नेके योग्य लड़कोंकी संख्या भी कम नहीं है। स्वामीजीने उन लोगोंमें अपने बालकोंको पढ़ानेकी अभिरुचि उत्पन्न की। परन्तु कठिनता यह थी कि राजकी नोकरीमें लगे रहनेके कारण दरोगोंके लड़के पढ़नेका अवसर नहीं पाते थे। स्वामीजीने राजाजीको उनकी कष्ट-कथा सुनायी। दयालु राजाजीने दरोगोंके बालकोंको पढ़ानेकी आज्ञा तुरन्त दे दी। पढ़नेवाले लड़कों-के भोजन (पेटिये) की भी व्यवस्था कर दी गयी। यद्यपि राज-कर्मचारियोंको यह व्यवस्था अच्छी न लगी, उन लोगोंने विरोध किया और राजाजीसे कहा कि दरोगोंके लड़के राज्यमें नौकरी करते हैं उन्हें स्कूलमें भेजनेसे काममें हानि पहुंचेगी। परन्तु राजा-जी अपने विचारपर दृढ़ रहे। स्वामी अखण्डानन्दजीके प्रयत्नसे स्कूलमें विद्यार्थियोंकी संख्या बढ़कर तिगुनी हो गयी। स्वामीजीने असमर्थ विद्यार्थियोंको पुस्तकों आदिकी सहायता देनेके लिये एक फण्ड खोला और चन्देके रूपमें राजकर्मचारियोंसे भी उसमें सहा-यता प्राप्त की।

राजाजी बहादुरका हृदय उपदेशको कितना ग्रहण करता था, इसका एक उदाहरण भी लीजिये—

राजाजी प्रातःकाल ८ बजेसे पहले नहीं जगते थे,—सोते ही रहते थे। स्वामी अखण्डानन्दजीको महलमें ही रहनेका स्थान दिया गया था। जिधर राजाजी सोते थे उसके दूसरी ओर बरण्डेमें स्वामीजीका आसन था। गरमीके दिन थे। स्वामीजी प्रातःकाल ही उठ जाते थे, परन्तु राजाजीके उठनेमें प्रतिदिन देर हुआ करती

थी। एक दिन स्वामी अखण्डानन्दजीने राजाजीसे पूछा—आप शय्या-त्याग किस समय करते हैं ? आपको विलम्बसे उठनेकी आदत कबसे है ? यह आदत स्वास्थ्यके लिये अच्छी नहीं है। विशेषतः एक राजाके लिये तो बहुत बुरी है। आपके ऊपर इतने लोगोंकी रक्षाका भार है और आप निश्चिन्त होकर ९ बजेतक सोते रहें – यह बात क्या राजधर्मके अनुकूल है ?

राजाजीने सरलताके साथ विनम्र शब्दोंमें उत्तर दिया—"यह आदत मुझे बहुत समयसे है। जब मैं जयपुरमें रहता था, तभीसे यह आदत है। जयपुर-दरबार स्वर्गवासी महाराजाधिराज सवाई रामसिंहजीकी मुझपर बड़ी कृपा थी। मेरी देखभाल भी वे स्वयं करते थे। मैं प्रायः उनके पास ही रहा करता था। रातको ३ बजेतक महाराज बीलियर्ड (अंग्रेजी खेल) खेला करते थे। मैं भी उनके साथ रहता था, खेलता भी था। बादमें सोता था। ऐसी दशामें देरसे उठनेकी आदत पड़ जाना स्वाभाविक है। महाराजाधिराज १० बजे तक उठते थे और ८।९ बजे मैं। उसी समयकी यह आदत है।"

स्वामीजीने कहा—"अब आपके लिये यह उचित नहीं है। नीतिकारोंने असमय सोनेकी बड़ी निन्दा की है। स्वामीजीने यह श्लोक भी कहा—

कुचेलिनं दन्तमलापधारिणम्
　　बह्वाशिनं निष्ठुरवाक्यभाषिणम्।
सूर्योदये चास्तमये च शायिनम्
　　विमुञ्चति श्रीरपि चक्रपाणिनम्॥

अर्थात् मैला-कुचैला कपड़ा पहननेवाला, दांतोंको साफ न रखनेवाला, बहुत खानेवाला, कड़ी बातें बोलनेवाला, सूर्यास्त और सूर्योदयके समय सोनेवाला यदि चक्रपाणि—विष्णु भी हो तो लक्ष्मी उसे छोड़ देती है। दूसरेकी तो बात ही क्या?

इस वार्तालापके दूसरे दिनसे ही राजाजीने प्रातःकाल उठना आरम्भ कर दिया। इतने दिनोंकी आदत उन्होंने बातकी बातमें छोड़ दी। कैसी सरलता है! अच्छी बातोंके ग्रहण करनेका कितना अनुराग है!

यह किसीसे अज्ञात नहीं है कि प्रतिवर्ष भारतवर्षसे हड्डियां बटोरकर विदेश भेजी जाती हैं। स्वामी अखण्डानन्दजीने किसी संवाद-पत्रमें पढ़ा कि गत वर्ष ४४ लाख रुपयेकी हड्डियां भारतसे विदेशको भेजी गयी। इस संवादकी चर्चा करते हुए स्वामीजीने राजाजीसे कहा—हड्डियोंकी खाद बड़ी अच्छी होती है, उससे जमीनकी उपजाऊ शक्ति बढ़ती है। परन्तु स्वार्थी विदेशी व्यापारियों और कमीशन या दलालीके भूखे लोभी ठेकेदारोंके कारण अब हड्डियां भी बचने नहीं पाती। हड्डियोंसे जमीनको स्वाभाविक खाद मिलती थी वह मिलने नहीं पाती। इसीसे उपजाऊ शक्ति दिनों दिन घटती जाती है। स्वामीजीने राजाजीसे यह अनुरोध भी किया कि यदि आप अपनी अधिकार-सीमामें ऐसी व्यवस्था कर दें कि जिससे हड्डियां बाहर न जाने पावें, तो बड़ा उपकार हो। राजाजीने स्वामीजीका प्रस्ताव स्वीकार कर उसी समय एक आज्ञापत्र द्वारा हड्डियोंके बाहर जाने देनेका निषेध कर दिया था।

स्वामी श्री० अखण्डानन्दजीने दो पत्र (मूल) हमें भेजनेकी कृपा की है, जो कि राजाजी बहादुरने उनके नाम स्वयं लिखे थे। पत्र अंग्रेजीमें हैं और उनका हिन्दी रूपान्तर निम्न प्रकार है :—

(१)

आगरा २६ दिसम्बर १८९४

प्रिय स्वामीजी महाराज,

मुझे आपके बहुतसे पत्र प्राप्त हुए हैं, किन्तु खेद है कि मैं उत्तर नहीं दे सका। मैंने पं० लक्ष्मीनारायणको एक बार उत्तर देनेके लिये आज्ञा भी दी थी। इसका कारण राजकीय कार्योंमें व्यग्र रहना तथा आगरेसे खेतड़ी और खेतड़ीसे आगरे आना जाना है। मैं फिर कल सायंकालकी गाड़ीसे यहांसे खेतड़ी जाऊँगा। आप शायद जानते होंगे, कर्नल ट्रेवर ए० जी० जी० ४ और ५ जनवरीको खेतड़ीका परिदर्शन करेंगे। इसके बाद फिर मुझे अपनी (ज्येष्ठा) लड़कीके विवाहकी तैयारीके लिये बहुत कुछ करना पड़ेगा। विवाह जनवरीकी समाप्तिमें होनेवाला है।

मैं आशा करता हूं कि पत्रोंका उत्तर न दे सकनेके लिये आप मुझे क्षमा करेंगे और पत्र देते रहेंगे। आप जानते हैं कि स्वामी विवेकानन्दजीके सभी गुरुभाइयोंका मैं कितना महत्त्व मानता हूं। इसलिये आप मेरी त्रुटियोंपर ध्यान न देंगे। मुझे श्री० स्वामीजीके दो तीन पत्र मिले हैं किन्तु किसीमें भी उन्होंने अपने

लौटनेके सम्बन्धमें कुछ नहीं लिखा है। उन्होंने मुझे एक फोनो-ग्राफ उपहारके रूपमें भेजा है, जिसे शायद आप भी जानते हैं।

अपने बहुतसे पत्रोंमें और विशेपकर अन्तिम पत्रमें जो कई एक गम्भीर निर्देश आपने किये हैं उनके लिये धन्यवाद देता हूं।

आपका बहुत सच्चा—
अजीतसिंह

(२)

माउण्ट आबू १६ जून १८९५

प्रिय स्वामीजी महाराज,

मुन्शी जगमोहनलालसे यह सुनकर मैं परमानन्दित हुआ हूं कि आप जयपुर ठहरे हुए हैं और मेरी प्रसन्नता पूछते हैं।

शायद आप जानते होंगे, एक स्वामी ज्ञानानन्दजी * यहां कई दिनोंसे ठहरे हुए थे किन्तु वे कल चले गये। वे अच्छे आदमी हैं और जब मिलनेके लिये आते थे तब मुझे प्रसन्नता होती थी। सम्भवतः वे आपसे भी जयपुरमें मिल सकते हैं।

कई दिनोंसे यहां बराबर वर्षा हो रही है, इसलिये यहां अधिक ठहरना पसन्द नहीं है। परन्तु मैं ठीक नहीं कह सकता कि यहांसे कब चलूंगा। क्योंकि मेरे देशके भागमें वर्षा होनेका संवाद नहीं मिला है। मैं अनुमान करता हूं कि अबतक निस्सन्देह गर्म हवाका चलना बन्द हो गया होगा। परन्तु अब भी समतल भूमिमें

* यह निर्देश वर्तमान भारतधर्ममहामण्डलके सञ्चालक श्री स्वामी ज्ञानानन्दजीके सम्बन्धमें है।

झुलसनसी गर्मी होगी। आपको जयपुरमें इसका कैसा अनुभव होता है और आजकल वहां गर्मी कितनी डिग्री है ?

आपने मुन्शी जगमोहनलालसे सुना होगा कि मुझे श्रीस्वामी विवेकानन्दजीका पत्र कुछ समय पहले मिला था। उसमें लिखा है कि भारतवर्ष कवतक लौटना होगा - इस सम्बन्धमें कोई निश्चय नहीं है।

आशा है, जब यह पत्र आपको मिलेगा, आप पूर्णरूपसे स्वस्थ होंगे।

आपका—अजीतसिंह

* * * *

राजा अजीतसिंहजी बहादुरके सम्बन्धमें लेखकके जिज्ञासा करनेपर उनके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए स्वामी अखण्डानन्दजीने एक घटनाका विवरण सुनाया, वह इस प्रकार है:—

—"एक वर्षमें जितने त्योहार आते हैं, खेतड़ीमें रहकर उन सबको मैंने देखा। त्योंहार मनानेमें निस्सन्देह राजपूताना बड़ा उत्साह रखता है। एक दिन राजाजीकी वर्षगाँठका महोत्सव भी मुझे देखनेका अवसर मिला। वर्षगाँठको जन्मतिथिके उपलक्षमें देवपूजा, ब्राह्मणभोजन आदि आवश्यक कृत्योंके अनन्तर दरबार होता है और राज्यके कर्मचारी तथा अन्य प्रजाके लोग नजर देते हैं। मैं यद्यपि दरबारमें सम्मिलित नहीं हुआ,—क्योंकि संन्यासीके लिये यह आवश्यक नहीं था—तथापि लोगोंके आग्रहसे ऊपर बरिन्डेमें ऐसे स्थानपर बैठ गया, जहांसे मुझे दरबारका

दृश्य अच्छी तरह दिखायी दे रहा था। दरबारके बीचमें राजाजी खूब चमकीली पोशाकमें विराजमान थे। उनके दाहिने और बाएँ पार्श्वमें यथाधिकार राजके सरदार और उमराव बैठे हुए थे। इनके सिवाय हाकिम अमला और प्रजाके गण्यमान्य सज्जनोंसे दरबार पूर्ण था। दीवानखानेसे बाहर आशा-सोटाधारी चोबदार पहरेपर डटे हुए थे। दरबारके बीच एक अहलकार सूची लेकर खड़ा हुआ, और जिस जिसका नाम वह पुकारता वही मुहर या रुपयेसे राजाजीको नजर करके यथा-स्थान बैठ जाता। इसी समय एक घटना ऐसी देखनेमें आयी जिससे मेरा हृदय विदीर्ण हो गया। मैंने देखा कि कुछ किसान—जिनके शरीर कठिन परिश्रमसे पक-पककर श्याम हो गये हैं, भुण्डके भुण्ड बाहर दूर खड़े हुए हैं। अपने राजाके दर्शनकी लालसासे वे नजर लेकर दूर दूरसे आये थे। उनमेंसे जो लोग उत्साहसे आगे बढ़कर भुककर दरबारको शोभा देखना चाहते थे वे बुरी तरह चोपदारों द्वारा विताड़ित कर दिये जाते थे—भेड़-बकरियोंकी तरह भगा दिये जाते थे। मैंने वहांके आदमीसे पूछा कि भाई, यह क्या बात है? उसने मुझसे कहा, महाराज, बात क्या है,—यही राजके आधार अन्नदाता किसान हैं। किन्तु अभागोंकी यह दशा है कि राजाके दरबारको देखनेका भी इन्हें मौक़ा नहीं दिया जाता। ये सब राजाजीको नज़र देनेके लिये आये हैं, किन्तु राज-दर्शन इनके भाग्यमें कहां—शामको राजका मुसाहिब बैठकर इनसे नज़रके नामपर रुपये वसूल कर लेगा और ये गरीब रुपयोंसे राजके

खजानेको भरकर अपने घरोंको चले जायँगे। जो राजकर्मचारी एक दो मुहर देकर इतना सम्मान पा रहे हैं, वे बारह महीन राज-को, प्रजाको लूटकर अपना घर भरते हैं और एक दिन मुहर देकर सम्मान-भाजन बनते हैं, किन्तु ये गरीब कठिन परिश्रमसे अन्नोत्पादन करके राजको देते हैं, प्रजाको देते हैं और ऊपरसे नजर देनेके समय ऐसा सम्मान पाते हैं।

किसानोंके इस अपमानमें मुझे राजलक्ष्मीका अपमान दिखायी दिया और मेरा हृदय जल उठा। दरबार विसर्जित हो गया, परन्तु दिन भर मैं व्याकुल रहा। सायंकाल राजाजी अपने खास सरदारोंके साथ बैठे हुए थे। उस समय उन्होंने मुझसे पूछा—कहिये, महाराज, दरबारका आनन्द कैसा रहा? आनन्दका नाम सुनते ही मेरे चित्तमें क्षोभकी वही लहर फिर जाग उठी। मैंने कहा—आनन्द! कैसा आनन्द? जिस समय आपका दरबार हो रहा था, उस समय मैं सन्तापसे जल रहा था, मानों मेरी छाती-पर एक एक पत्थर गिर रहा था। यह सुनते ही सब आश्चर्य-चकित हो, मेरी ओर ताकने लगे। राजाजीने नम्रतासे पूछा, यह क्यों महाराज? इसपर मैंने दरबारके समय गरीबोंके साथ दुर्व्य-वहार होनेका वृत्तान्त कह सुनाया। उस कष्ट-कथाको कहते-कहते मेरा कण्ठावरोध हो गया, आंखोंसे अश्रु धारा बह चली। यह देख-कर सहृदय राजाजीकी भी आँखें गीली हो गयीं। उनके हृदयपर विलक्षण बिजली दौड़ गयी। बड़े गम्भीर स्वरमें उन्होंने कहा—गङ्गासहाय! इस बातको याददाश्तके लिये लिख लो कि अगले

दरबारमें किसीको नहीं रोका जाय और सबकी नजर मैं स्वयं लूंगा।" इसके वर्ष भर बाद वर्षगाँठका दरबार फिर सदाकी भाँति हुआ। उसमें स्वामी विवेकानन्दजी भी उपस्थित थे। राजा अजीतसिंहजीने अपने वचनको स्मरण रक्खा और प्रजाके छोटे बड़े सभी लोगोंने दरबारमें सम्मिलित होकर स्वयं नजर देते हुए अपनी भक्ति प्रदर्शित की! वह दृश्य चिरस्मरणीय था, वह भाव स्वर्गीय था और वह समय अपूर्व सुखकर था।



छठा अध्याय



[स्वामी विवेकानन्दजीका अमेरिकासे प्रत्यावर्तन, मद्रासमें मुन्शी जगमोहनलालजी द्वारा खेतड़ीनरेशका स्वामीजीकी सेवामें अभिनन्दन-पत्र-प्रेषण और खेतड़ी पधारनेका निमंत्रण, स्वामीजीका खेतड़ीमें आगमन, खेतड़ीमें स्वागतका उत्सव, रामकृष्ण मिशनकी ओरसे खेतड़ी-नरेशको अभिनन्दन-पत्र-प्रदान, खेतड़ीनरेशका भाषण, स्वामी विवेकानन्दजीकी अपने स्वागतके उत्तरमें वक्तृता, अपने कार्योंमें खेतड़ीनरेशकी सहायताका आभार-स्वीकार, खेतड़ीके युवकोंको उपदेश,—एक दूसरी सभामें खेतड़ीनरेशकी अध्यक्षतामें स्वामीजीका 'वेदान्त' विषयपर भाषण, खेतड़ीसे खेतड़ीनरेश सहित प्रस्थान और जयपुरमें अवस्थान, स्वामीजीकी माताको खेतड़ीराज्यके खजानेसे एक सौ रुपये मासिक भेजनेकी स्थायी व्यवस्था, स्वामीजीकी खेतड़ीनरेशके नाम एक ओज और उत्साहपूर्ण पत्रमाला तथा उसका हिन्दी रूपान्तर

स्वामी विवेकानन्दजीके अमेरिकासे लौटनेपर मद्रासवालोंने उनके स्वागतका सर्व प्रथम आयोजन कर अपना उत्साह प्रकट किया था। सहस्रोंकी संख्यामें एकत्र हो, मद्रासियोंने स्वामीजीको अभिनन्दन-पत्र प्रदान किया था। राजा अजीतसिंहजी बहादुरने अपनी ओरसे अभिनन्दन करनेके लिये मुन्शी जगमोहनलालजीको मद्रास भेजा। मुन्शीजीने खेतड़ीका अभिनन्दन-पत्र स्वामीजीकी भेट किया। उपस्थित जन-समूहके बीच सभी अभिनन्दन-पत्रोंके उत्तरमें स्वामीजीने बड़ा प्रभावशाली भाषण किया था। मुन्शीजी स्वामीजीको खेतड़ी पधारनेके लिये निमंत्रित भी कर आये थे।

स्वामीजी मद्राससे चलकर घूमते हुए दिल्ली पहुंचे और दिल्ली-से राजपूतानेकी ओर चले। ट्रेनके रेवाड़ी स्टेशनपर पहुंचतेही स्वामीजीने देखा कि उनके लिये खेतड़ी-नरेशके आदमी सवारीके साथ तैयार खड़े हैं। उस समय शेखावाटीमें जानेवालोंको रेवाड़ी स्टेशनपर उतरना पड़ता था। रेवाड़ी—फुलेरा—कार्ड लाईन तब तक बनी नहीं थी। स्वामीजीको पहले अलवर जाना था, क्योंकि अपने भक्तोंसे वे प्रतिज्ञाबद्ध हो चुके थे। इसलिये राजाजीके कर्मचारियोंको उन्होंने कह दिया कि, आप लोग जायँ, हम जयपुर होकर खेतड़ी पहुंचेंगे।

अलवरमें पांच छै दिन ठहरकर अपने पूर्व निश्चयके अनुसार स्वामीजी जयपुर पहुंचे और वहां खेतड़ी-भवन (Khetri-House) में अवस्थान किया। जयपुरसे खेतड़ी पहुंचनेके लिये सवारीका प्रबन्ध हो गया। जयपुरसे खेतड़ीका ४५ कोसका अन्तर है। लम्बा सफर होनेके कारण दो तीन जगह ठहरना—पड़ाव डालना पड़ा था। स्वामीजीके एक प्रामाणिक जीवनी-लेखकने लिखा है कि उस वार जयपुरसे खेतड़ी जाते हुए एक ठहराव अथवा पड़ावपर स्वामीजीको एक भूत दिखायी दिया था। जो हो, स्वामीजीकी अगुआनीके लिये राजाजी प्रायः ९ कोस स्वयं आये और छै घोड़ोंकी गाड़ीमें अपने साथ बैठाकर उन्हें सादर खेतड़ी लिवा ले गये। खेतड़ीकी प्रजामें उस समय विशेष उल्लास छाया हुआ था। कारण राजाजी भी विलायत-यात्रा निर्विघ्न और सकुशल समाप्त कर लौटे ही थे। इसलिये प्रजामें उमङ्ग थी। स्वामीजीके

पहुंचनेसे हर्षमें हर्ष बढ़ गया। अपने नरेश और स्वामीजीके स्वागतमें खेतड़ीनिवासियोंने विभिन्न प्रकारसे भाग लेकर प्रेम, भक्ति और उत्साह प्रकट किया। उस अवसरकी स्मृतिकी उज्ज्वल रेखा आज भी उन लोगोंके हृदय-पटलपर खिची हुई है, जो अपने पाप या पुण्यके कारण इस समयतक जीते हैं। राजाजी और स्वामीजीके अभिनन्दनके लिये खेतड़ी हाईस्कूलमें एक महती सभा हुई थी। उसमें कई एक सभा—समितियोंकी ओरसे अभिनन्दन-पत्र दिये गये थे। भारतप्रसिद्ध रामकृष्ण मिशनकी ओरसे स्वयं स्वामी विवेकानन्दजीने राजाजी बहादुरको अभिनन्दन-पत्र प्रदान किया था। राजाजीने सभीका धन्यवाद करते हुए अपने भाषणमें कहा था— "मेरे पहले मेरे पिताने जिन भावोंके साथ काम करनेका प्रयत्न किया था, मैं उन भावोंका विस्तार करनेका यथाशक्य उद्योग करूंगा। जबसे खेतड़ीके शासनका भार मेरे हाथोंमें आया है, तबसे मैंने शिक्षा-विभागकी उन्नतिकी ओर विशेष लक्ष्य रक्खा है। इसी वर्षमें तीन नयी पाठशालाएं खोली गयी हैं और जो पुरानी हैं, वे भी अच्छी दशामें चल रही हैं। प्रजाके स्वास्थ्यकी ओर ध्यान देना भी मैंने अपना कर्तव्य समझ रक्खा है। औषधालय खोलने और आयुर्वेदकी शिक्षा दिलाने आदिकी व्यवस्था करनेका मैं विचार कर रहा हूं। राजके उद्योगमें प्रजाका सहयोग होनेपर ही उद्देश्यकी सिद्धि होगी, इत्यादि।" राजाजीका भाषण समाप्त होनेपर स्वामी विवेकानन्दजी वक्तृता करनेके लिये खड़े हुए। आपने धन्यवादपूर्वक कहाः—भारतवर्षकी उन्नतिके लिये जो

थोड़ा बहुत मैंने किया है, वह कभी न होता, यदि राजाजी मुझे नहीं मिलते। (···What little I have done for the improvement of India, would not have been done, if Rajaji had not met me) प्राच्य और पाश्चात्य आदर्शोंकी तुलना करते हुए स्वामीजीने कहा कि पाश्चात्य देशका आदर्श है भोग और प्राच्य देशका आदर्श है त्याग। स्वामीजीने खेतड़ीके नवयुवकोंको पाश्चात्य आदर्शके मोहमें न पड़कर दृढ़ताके साथ प्राच्य आदर्शको ग्रहण करनेके लिये प्रोत्साहन दिया। आपने कहा—शिक्षाका अर्थ है अपने हृदयमें पहलेसे वर्तमान ईश्वरत्वको प्रकाशित करना। अतएव बालकोंको शिक्षा देनेके लिये उनके प्रति अगाध विश्वास स्थापित करनेकी आवश्यकता है। प्रत्येक बालक अनन्त ईश्वरीय शक्तिका आधार है, इस बातपर दृढ़ विश्वास स्थापित करना होगा। अध्यापकोंको समझना होगा कि इन बालकोंके हृदयमें जो ईश्वरत्व सुप्तावस्थामें वर्तमान है उसे जागृत करनेका हमें प्रयत्न करना है। बालकोंको शिक्षा देते समय हमें एक और बातका स्मरण रखना चाहिये और वह बात यह कि बालक स्वयं कुछ सोचना सीखें इसके लिये उन्हें उत्साहित करना चाहिये। इस मौलिक चिन्ताका अभाव ही भारतकी वर्तमान दुरवस्थाका कारण है। इस प्रकार यदि उन्हें शिक्षा दी जाय तो वे मनुष्य होंगे और अपने जीवनकी अनेक कठिनाइयोंको हल करनेमें स्वयं समर्थ होंगे।

स्वामीजीने इसी यात्रामें एक महत्वपूर्ण भाषण 'वेदान्त' विषय पर भी दिया था। उस सभामें सभापतिका आसन राजा अजीतसिंहजी बहादुरने ही ग्रहण किया था।

स्वामीजीने अपने उस भाषणके प्रारम्भमें ग्रीक और आर्य जातिकी विशिष्टता बड़ी उत्तमतासे समझायी और बतलाया कि युरोपकी सभ्यतापर भारतवर्षकी चिन्ता-शक्तिका कितना प्रभाव पड़ा है। बादशाह शाहजहांके अन्यतम पुत्र दाराशिकोहने शुकोपनिषद्का फारसी भाषामें अनुवाद कराया था। जर्मन दार्शनिक विद्वान् शोपनहार उसका लैटिन अनुवाद देखकर मुग्ध होगये थे। उनके लिखे दर्शन-ग्रन्थोंमें उपनिषदोंका प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। दूसरे दार्शनिक काण्टने भी उपनिषदोंके उपदेशोंकी छाया ली है। युरोपमें साधारणतः शब्द-विद्याकी चर्चाके लिये ही वहांके पण्डित संस्कृतकी आलोचना प्रत्यालोचना करते हैं, परन्तु वहां प्रोफेसर डासन जैसे व्यक्ति भी हैं जो किसी अन्य कारणसे नहीं किन्तु दर्शन-शास्त्रकी चर्चाके लिये ही संस्कृतके अनुशीलनका आग्रह रखते हैं। स्वामीजीने यह भी आशा प्रकट की कि आगे चलकर युरोपमें संस्कृत-साहित्यके प्रति लोगोंका आग्रह और भी बढ़ेगा। अनन्तर स्वामीजीने वेदोंके सम्बन्धमें अपना मत प्रदर्शित करते हुए कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्डका विषय विशद रूपसे समझाया। बीच-बीचमें जो लोग प्रश्न करते थे उन्हें वे समाधानकारक उत्तर भी देते जाते थे।

स्वामीजीने अपने पाण्डित्यपूर्ण भाषणमें यह भी प्रतिपादन किया कि ग्रीक लोगोंकी तरह आर्य भी जगत्की समस्याकी मीमांसा

करनेके लिये पहले बाह्य प्रकृतिकी ओर दौड़े थे—सुन्दर और रमणीय बाह्य-जगत् उन्हें भी प्रलोभित कर धीरे-धीरे बाहर ले गया था। परन्तु भारतवर्षमें यही विशेषता थी कि यहां जो भाव अत्यन्त उच्चताके द्योतक नहीं थे, उनका कुछ भी मूल्य नहीं समझा जाता था। मृत्युके बाद क्या होगा, इसके यथार्थ तत्त्वका निरूपण करनेकी इच्छा साधारणतः ग्रीकोंके मनमें उत्पन्न ही नहीं हुई,परन्तु हमारे यहां पहलेसे ही यह प्रश्न बार-बार पूछा जाता रहा है कि मैं कौन हूं, मृत्युके बाद मेरी क्या दशा होगी? ग्रीकोंके मतसे मनुष्य मरकर स्वर्गमें जाता है, और उसीको अन्तिम फल माना है। परन्तु हिन्दू इतनेसे ही तृप्त नहीं हुए। उनके विचारसे स्वर्ग भी स्थूल संसारके अन्तर्गत है। हिन्दुओंका मत है कि जो संयोगसे उत्पन्न है, उसका नाश अवश्यम्भावी है। वे बहिःप्रकृतिसे पूछते हैं—आत्मा क्या है? क्या उसे जानती है? प्रकृतिकी ओरसे उत्तर मिला—नहीं। क्या ईश्वर है? प्रकृतिने इसके उत्तरमें कहा—मैं नहीं जानती। इस उत्तरको पाकर वे प्रकृतिके यहांसे लौट आते हैं और समझते हैं कि बाह्य प्रकृति चाहे जितनी महान् हो, परन्तु वह देश और कालकी सीमामें आबद्ध है। तब फिर एक ओर वाणी निकली, अन्य प्रकारके उच्च भावोंकी धारणाका उदय होने लगा। उस वाणीसे ध्वनि निकली—"नेति" "नेति"। उस समय भिन्न भिन्न देवता एक हो गये, चन्द्रमा, सूर्य, तारा—केवल यही क्यों;—समग्र ब्रह्माण्ड एक हो गया। उस समय धर्मके इस आदर्शके ऊपर आध्यात्मिकताकी भित्ति स्थापित हुई।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकम्। इत्यादि।

वहां सूर्यका प्रकाश नहीं होता वहां चन्द्रमा और तारे भी नहीं हैं, यह विजली भी वहां नहीं चमकती, तो फिर इस सामान्य अग्निकी क्या गिनती? एकके प्रकाशसे ही सब प्रकाशित होते हैं। अब उस सीमाबद्ध अपरिणत व्यक्तिविशेष—सबके पाप पुण्य-का विचार करनेवाले क्षुद्र ईश्वरकी धारणा नहीं रह जाती। उस दशामें बाहर अन्वेषण नहीं होता, अपने ही भीतर अन्वेषण आरम्भ होता है।

इस कथनके अनन्तर स्वामीजीने द्वैत, विशिष्टाद्वैत और अद्वैत सिद्धान्तकी चर्चा चलाकर बतलाया कि यह प्रत्येक सिद्धान्त—मत एक-एक सीढ़ीके समान है। एक सीढ़ीपर चढ़कर ही दूसरी पर पांव दिया जाता है और इस प्रकार निर्दिष्ट स्थानपर पहुंचा जाता है। अन्तमें अद्वैतवादमें स्वाभाविक परिणति होती है। उसकी अन्तिम उक्ति है—"तत्त्वमसि।" आचार्योंने अपने अपने मतकी पुष्टिके लिये खींचातान की है। वर्तमान भारतमें धर्मका तत्त्व अन्तर्हित हो गया है केवल थोड़ेसे बाह्य अनुष्ठान मात्र रह गये हैं। इस समय जो लोग हैं, उनकी विचित्र दशा है। रन्धन-शाला ही उनका मन्दिर हो रहा है और रसोईके बर्तन देवता। यह भाव जल्दी दूर करना चाहिये। जितना शीघ्र यह भाव दूर होगा, उतना ही हिन्दू-धर्मका, हिन्दू-जातिका कल्याण होगा। प्रयत्न ऐसा होना चाहिये कि जिससे उपनिषदोंकी महिमाको यथार्थ रूपसे हृदयङ्गम कर भिन्न भिन्न सम्प्रदाय, भेद-भावको दूर कर दें।

अन्तमें स्वामीजीने भली भांति समझा दिया कि ज्ञानका अर्थ है बहुत्वमेंसे एकत्त्वका आविष्कार। जब कोई विज्ञान, समुदय विभिन्नताको ओटमें अवस्थित एकत्त्वका आविष्कार करता है तभी वह उच्चतम सीमामें पहुंच जाता है।

* * *

अधिक ठहरनेका स्वामीजीको अवकाश न था। इसलिये खेतड़ीसे विदा होकर वे पुनः जयपुर चले गये। राजाजी भी उन्हें पहुंचानेके लिये साथ साथ जयपुरतक गये। जयपुरमें लोगोंके आग्रहसे एक मन्दिरमें सभा हुई। उस सभाके अध्यक्षका आसन भी राजाजी बहादुरने ही सुशोभित किया था। उस सभामें स्वामीजी एक हृदयग्राही भाषण देकर जोधपुर आदिकी ओर प्रस्थान कर गये थे।

स्वामीजीके साथ राजाजीकी कोरी वाचनिक सहानुभूति (जबानी जमा-खर्च) न थी। वे उनके सच्चे सहायक और हितैषी थे। स्वामीजीकी सहायता बराबर उनकी आवश्यकताकी पूर्ति करनेके रूपमें करते रहते थे। स्वामीजीकी माताको एक सौ रुपये मासिककी सहायता देनेकी राजाजी बहादुरने स्थिर व्यवस्था कर दी थी और यह सहायता राजाजी और स्वामीजीके लोकान्तरित होनेके बाद भी खेतड़ी-राजके खजानेसे स्वामी विवेकानन्दजीकी-माताको उनका देहावसान होने तक निरन्तर मिलती रही। अस्तु।

राजा अजीतसिंहजी बहादुर और स्वामी विवेकानन्दजीके साक्षात्कार और पारस्परिक प्रेम आदिका यह संक्षिप्त विवरण है।

इससे पाठकोंको ज्ञात होगा कि राजपूतानेके एक छोटेसे राज्यके अधिपतिने भारतके नये भावोंका कितना स्वागत किया था, कितनी सहानुभूति दिखायी थी, कितनी सहायता पहुंचायी थी। स्वामी विवेकानन्दजीने राजाजी बहादुरके पास एक स्वरचित उत्साह-वर्द्धक ओजपूर्ण पद्यमाला भी भेजी थी उसे हम मूलरूपमें यहां उद्धृत कर इस प्रकरणको समाप्त करते हैं :—

Hold On Yet A While, Brave Heart.

(Written to the Rajaji Bahadur of Khetri.)

If the sun by the cloud is hidden a bit,
If the welkin shows but gloom,
Still hold on yet a while, brave heart!
The Victory is sure to come..

No winter was but summer came behind,
Each hollow crests the wave,
They push each other in light and shade,
Be steady then and brave.

The duties of life are sore indeed,
And its pleasures fleeting vain,
The goal so shadowy seems and dim,
Yet plod on through the dark, brave he art
With all thy might and main.

Not a work will be lost, and no struggle vain,
Though hopes belighted, powers gone,
Of thy loins shall come the heirs to all,
Then hold on yet a while, brave soul,
No good is e'er undone.

Though the good and wise in life are few,
Yet theirs are the reins to lead;
The masses know but late the worth,
Heed none and gently guide.

With thee are those who see afar,
With thee is the Lord of might,
See blessings hover on thee great soul
To thee may all come right.

अंग्रेजीसे अनभिज्ञ पाठक इस कविताके हिन्दीरूप निम्नलिखित तुकबन्दीको पढ़कर मूलका भावार्थ समझ लें—

वीर-हृदय ! दृढ़ रहो कभी मत विचलित होना ।

मेघोंसे यदि सूर्य कभी क्षणभर छिप जावे,
गगन-प्रान्तमें पूर्ण अंधेरा यदि छा जावे ।
वीर-हृदय ! दृढ़ बने रहो, मत विचलित होना,
निश्चय होगी विजय तुम्हारी धैर्य न खोना ॥
(यदि) शिशिर न आवे तो वसन्तका कहां पता है ?
पूर्ति तरङ्गके पूर्व पुनः गह्वर रहता है ।
करते हैं साहाय्य-दान वे सदा निरन्तर,
एक एकको अस्तु, रहो दृढ़ नील्य वीरवर ॥
जीवनके कर्तव्य कभी भी सुखद न होते,
पर विलास भी यहां सभी क्षणभङ्गुर होते ।
छाया-सम अस्पष्ट लक्ष्य भी दीख रहा हो,
अन्धकारमें वीर ! बढ़ो सब शक्ति लगा दो ॥

नष्ट न होगा यत्न समर यह व्यर्थ न होगा,
आशाएं मिट जायं भले ही बल न रहेगा।
रहो बद्ध-कटि वीर ! सफल निश्चय ही होगे,
विफल न होगे कर्मवीर ! यदि अटल रहोगे॥
धीरज औ धीमान धरामें यद्यपि कम हैं,
पर वे ही वर-वीर विश्वके नायक सम हैं।
बहुत काल उपरान्त जानती जनता उनको,
ध्यान न लाना इसे मार्ग बतलाना इनको॥
साथ तुम्हारे सौम्य दूर-दर्शी सब ही हैं,
तथा तुम्हारे संग शक्तिके स्वामी भी हैं।
तुम्हें सहस्रों बार यही हूं आशिष् देता,
रहो बुद्धि-सम्पन्न वीरवर ! पुण्य-प्रणेता॥

